श्री

विचारमाला.

साधु श्रीअनाथदासजी विरचित

साधु श्रीगोविंददासकृत टीकासहित

पंडित श्रीपीतांबर विशोधित

सर्व मुमुक्षुके हितार्थ

पुजारा कानजी भीमजीनें

श्री मुंबैमैं

" जगदीश्वर " छापखानेमें छपायके प्रसिद्ध करी.

आवृत्ति छट्टि.

संवत् १९५०. सन १८९४.

किंमत रु० ।।।=

दोहा.

अर्धश्लोक करि कहत हूं, कोटि ग्रंथको सार ॥
ब्रह्म सत्य मिथ्या जगत्, जीव ब्रह्म निर्धार ॥ १ ॥
ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्, ताकी बानी वेद
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेदभ्रम छेद ॥ २ ॥

वेदांतग्रंथ बेचनेके हैं.

:o:o:

		कि० रु०	आ०
१	श्रीमदध्यात्मरामायण भाषा दोहा चौपाई आदि रसिक छंदोंसहित.	४	०
२	श्रीमद्भागवत भाषा एकादशस्कंध.	१	८
३	ज्ञानप्रकासआदि ग्रंथ पांच.	०	६
४	भाषाटीकासहित ईशादि अष्ट उपनिषद्.	६	०
५	ब्रह्मज्ञानी अखाभक्तके छप्पे गुर्जरभाषामें.	०	८
६	ब्रह्मज्ञानी भुल्ला शाहकी सीहरफी.	०	२
७	नानकस्तवन स्तोत्र.	०	१
८	गुरुकौमुदी.	१	०
९	विचारमाला औ ज्ञानकटारी.	०	१४
१०	श्रीभर्तृहरिकृत वैराग्यशतक कविहरिदयालकृत भाषासहित.	०	१०

श्रीमुंबैमैं.

यह ग्रंथ पुजारा कानजी भीमजीके पास. वडकी गादी दरियास्थानमैं, औ कालकादेवीके रस्तेपर हरिप्रसाद भगीरथकी पुस्तकालयमैं. औ पण्डित ज्येष्ठारामसुकुंदजीके पुस्तकालयमें मिलेगा. डाकखर्च अधिक लगेगा.

श्रीपरमात्मने नमः

प्रथमावृत्तिकी प्रस्तावना

सर्वमत शिरोमणि श्रीअद्वैत मत है । सोई मुमुक्षुकूं उपादेय है । इसके जाननैं अर्थ श्रीसूत्रभाष्य आदिक अनेक संस्कृत ग्रंथ हैं । तिनमैं अप्रवीणकी प्रवृत्ति होवै नहीं । यातैं परम दयालु साधु श्रीअनाथदासजीनैं अष्टम विश्रामके ४० वें दोहेकी टीकामे उक्त रीतिसैं स्वमित्र श्रीनरोत्तमपुरीकी सूचनासैं श्रीविचारमाला नामक २११ दोहाबद्ध भाषाग्रंथ रच्या है । याकी कविता अति उत्कृष्ट है । यह वेदांतके सर्व भाषा ग्रंथनसैं प्रथम है । इसके हुये वर्ष २१६ भये । यामैं वेदांतके ग्रंथनका रहस्यरूप गंभीर अर्थ हैं । सो टीकाविना दुर्ज्ञेय है । याकी सविस्तर संस्कृत टीका है । और ८००० श्लोककी भाषा टीका है । सो मंदमतिमानकूं उपयोगी नहीं, यह जानिके गंभीर मतिमान् दादूपंथी साधु श्रीगोविंददासजीने, बावा बनखंडीके शिष्य श्रीहरिप्रसादजीकी इच्छासैं, यह बालबोधिनी नाम टीका करी है । यह ग्रंथ प्रथम त्रिपाठी (गंगायमुना) रूढीसैं लिख्याथा; सो भाषावालेकूं सुगम होवै नहीं । यातैं पंडित श्रीपीतांबरजीनैं सरल रूढीसैं लिखवायके औ लिखता दोषतैं भ्रष्ट पदनकूं शुद्ध करिके प्रेरणा

करी; तब परोपकारी संतनके दास पूजारा, कानजीनें मुंबेमैं छपायके प्रसिद्ध किया है । या ग्रंथका विषय, नीचे धरी अनुक्रमणिकामैं स्पष्ट है । दृष्टिदोषतैं कहूं अशुद्ध होवै तौ सज्जनोंनैं सुधारिके वांचना, यह विनति है ।

द्वितीया औ तृतीयाऽऽवृत्तिकी प्रस्तावना.

इस आवृत्तिमें मूलग्रंथके वामबाजू प्रसंगनके चढते अंक लगायकें तिनके अनुसार विस्तृत मार्गदर्शक अनुक्रमणिका धरी है । तथा समग्र मूल औ टीकाविषे पदच्छेद कीये हैं । तथा मूल औ टीकाके अक्षरनका भेद कीया है । तथा अवतरण मूल औ टीकाके विभाग (पारिग्राफ) कीये हैं । तथा पूर्णविराम आदिक चिन्ह योग्य स्थलमैं धरे हैं. । इतनी विलक्षणता करी है ।

मालिनी सवैया छंद.

दास अनाथ जु ग्रंथ रच्यो यह नाम विचारह
मालहि गायो ॥ गोविंददास जु संत सुलच्छन
ताकर टीक सुठीक बनायो ॥ शुद्ध कियो
सुपितांबर पंडित सादर कानजि ताहि छपायो॥
मुंबइ मांहिं प्रसिद्धि प्रयोजन सो सतसंगिजनो
मन भायो ॥ १ ॥

अथ श्रीविचारमालाकी मार्गदर्शक अनुक्रमणिका,

प्रथम विश्रामकी अनुक्रमणिका १.

शिष्यकी आशंका १–१४

द्वितीय विश्रामकी अनुक्रमणिका २.

सत्संग महिमा १५–२५

तृतीय विश्रामकी अनुक्रमणिका ३.

सप्तज्ञानभूमिकावर्णन २६–३७.

चतुर्थ विश्रामकी अनुक्रमणिका ४.

ज्ञानसाधन वर्णन ३८–६०.

पंचम विश्रामकी अनुक्रमणिका ५.

जगत्की आत्मस्वरूपता ६१--६८.

षष्ठ विश्रामकी अनुक्रमणिका ६.

जगत्का मिथ्यात्व ६९–७४.

इति श्रीविचारमालाया अनुक्रमणिका.

समाप्ता.

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

अथ गोविंददासकृत बालबोधिनी टीकासहित

विचारमाला.

शिष्य आशंका वर्णनं नाम

प्रथमविश्रामप्रारंभः ॥ १ ॥

(१) दोहा—गणपति गिरिपति गोपति, गिरिजा गौरि दिनेश ॥ ईश पंच मम दासके, हरो सु पंच क्लेश ॥१॥ श्रीगुरु दासगोपाल नति, सत सुख परमप्रकाश ॥ जिन पदरज शिर धारकर, महबिलास तम नाश ॥ २ ॥ श्रीमत् हरिप्रसादजू, चिद्वपु रहितप्रछेद ॥ विद्याप्रद गुरु तिहि नमो, जिह प्रसाद गत खेद ॥ ३ ॥

गुरु जुग पंच मनाइके, यिह धरनिज उपकार ॥ विचारमाल टीका रचूं, बालबोधिनी सार ॥ ४ ॥

(२) ननु टीका करणेलगे तो टीकाका लक्षण कहा चाहिये; काहेतें लक्षण अरु प्रमाणकर वस्तुकी सिद्धि होवै है ? तहां सुनोः—वाक्यके पद भिन्नभिन्न कहणे, औ पदोंके अर्थ कहणे, औ व्याकरणके अनुसार पदोंकी व्युत्पत्ति करणी, औ वाक्यके पदोंका अन्वय (संबंध) करणा, औ वाक्यके अर्थमें शंका होवै ताका समाधान करणा, इन पंचलक्षणवाली टीका कहिये है. । अब ग्रंथके आरंभमें करणीय जो मंगल तिसके प्रयोजन कहैहैं; काहेतें, प्रयोजनविना मंदबी प्रवर्त्त होवै नहींः—ग्रंथकी निर्विघ्नसमाप्ति औ श्रेष्ठाचार औ ग्रंथकर्तामें नास्तिक भ्रांतिकी निवृत्ति इत्यादिक मंगलके प्रयोजन हैं. सो मंगल, वस्तुनिर्देशरूप औ आशीर्वादरूप औ

नमस्काररूप भेदतैं त्रिधा है। सगुण वा निर्गुण परमात्मा वस्तु कहिये है, तिसका निर्देश कहिये कीर्तन वस्तुनिर्देश कहिये है.। स्व वा शिष्यके वांछितका अपणें इष्टदेवसैं प्रार्थन आशीर्वाद कहिये है। अब तिनमैसैं ग्रंथके प्रयोजनकों दिखावते हुए नमस्काररूप मंगल करै हैं:—

दोहा—नमो नमो श्रीराम जू, सत् चित् आनंदरूप ॥ जिहि जाने जगस्वप्नवत्, नासत भ्रम तम कूप ॥१॥

टीका:—श्रीसहित जो सगुण राम है, ताकेतांई नमस्कार है औ सत् चित् आनंदस्वरूप जो निर्गुण ब्रह्म है, ताके तांई नमस्कार है.। जू शब्दका देहलीदीपककी न्याई दोनों और संबंध है.। सत्य कहिये त्रिकाल अबाध्य, चित् कहिये अलुप्त प्रकाश, आनंद कहिये दुःखसंबंधतें रहित निरतिशयसुखरूप, जिसके साक्षात्कारतें अविद्या तत्कार्य-

रूप जगत् निवृत्त होवै है. । दृष्टांतः—जैसै जागृत्के ज्ञानतें स्वप्न जगत् निवृत्त होवै है तद्वत् । काहेतें भ्रमरूप होणेतें. । कैसा जगत्है, तमकूप कहिये अंधकूपकी न्यांई दुःखदाई है । ब्रह्मज्ञानतें अविद्या तत्कार्यरूप अनर्थकी निवृति कही, सो परमानंदकी प्राप्तिसैं विना बनै नहीं, यातें परमानंदकी प्राप्ति अवश्य होवै है; सो ग्रंथका प्रयोजन है ॥ १ ॥

पूर्व कहे अर्थमैं शंकापूर्वक उत्तरकाः—

दोहा—राम मया सत्गुरुदया, साधु-
संग जब होय ॥ तब प्रानी जाने कछु,
रह्यो विषयरस भोय ॥ २ ॥

टीकाः—वादी शंका करै हैः—कछू कहिये तुच्छ जो विषयसुख, तामैं रह्यो भोय कहिये आसक्त हुवा जो जीव, सो ब्रह्मकूं कैसे जाने है ? उत्तरः—साधु कहिये आगे कहणें हैं लक्षण जिनके, संग कहिये तिनमैं निष्काम प्रीति. । राममया क-

हिये ईश्वरके ध्यानकर जो चित्तकी एकाग्रता औ सत्गुरु कहिये यथार्थगुरु, अर्थात् ब्रह्मश्रोत्री ब्रह्मनेष्ठी, तिनकी दया कहिये शिष्यकूं तत्त्वसाक्षात्कार होवै इस संकल्पपूर्वक जो महावाक्यका उपदेश, सो जब होवै तब प्राणी कहिये प्राणधारी जीव, जानै कहिये ब्रह्मको अपना आत्मा जानै है. । सो ब्रह्म आत्माका अभेद इस ग्रंथका विषय है। अधिकारी अनुबंध चतुर्थविश्राममैं कहेंगे, प्रयोजन अनुबंध प्रथम दोहेमैं कहा, इन तीनोंके बनणेसें संबंध अनुबंध अर्थतें सिद्ध होवे है ॥ २ ॥

इस रीतिसैं अनुबंध कहकर अब ग्रंथके रचनेकी प्रतिज्ञा करै हैं:—

दोहा—पदवंदन आनंदयुत, करि श्री देव मुरारि ॥ विचारमाल वरनन करूं, मौनी जू उर धारि ॥ ३ ॥

टीका:—मैं अनाथ दास विचारमाला संज्ञक—

ग्रंथकूं रचताहूं, क्याकरके, आनंद कहिये सुख-स्वरूप तिसकरि युत औ श्री कहिये सतस्वरूप तिसकरि युत औ देव कहिये प्रकाशरूप निर्गुण ब्रह्मकूं नमस्कार करके। ननु इहां श्री युतशब्दका सत्य अर्थ होवै, तौ, श्रीनाम शोभाका है; तिसवाले आविद्यक पदार्थ सत्य कहे चाहिये? उत्तरः—विद्वान्की दृष्टिमैं अविद्या तत्कार्य सर्व असत् है यातैं श्रीयुतपदका सतही अर्थ है। औ मुरारि कहिये मुरनाम दैत्यके हंता जो सगुणब्रह्म, ताके चरणोंकूं नमस्कार करके। यद्यपि मुरारि संज्ञा वैकुंठवासी चतुर्भुज मूर्तिकी है तथापि सो मूर्ति सगुण ब्रह्मनैंही धारण करीहै। जो जिज्ञासु या ग्रंथकूं हृदयमें धारण करे सो मौनी है वा इस पदका और अर्थ करणाः—मौनी जो हमारे गुरु हैं तिनका हृदयमें स्मरण करके ॥ २ ॥

(३) किं मौन? इस प्रश्नका अभिप्राय यह हैः—मौन चार प्रकारका है, बाणीका मौन [१] औ

इंद्रियोंका [२] औ मानस [३] चतुर्थ ज्ञान-मौन है [४] तिनमैं कौन मौन तुमारे गुरोंने अंगीकार किया हैं तहां तुरीयपक्ष मानकर कहै हैं:-

दोहा-यह मैं मम यह नाहिं मम, सब विकल्पभै छीन ॥ परमातम पूरन सकल जानि मौनता लीन ॥ ४ ॥

टीका:-सकल कहिये अन्नमयादि पंचकोशनतैं परे जो आत्मा ताकूं पूरण कहिये ब्रह्मरूप जानकर, यह कहिये पंचकोशही मेरा स्वरूप है अथवा नहीं; यह पंचकोश मम कहिये मेरा दृश्य है वा नहीं; इत्यादि विकल्प कहिये संशयोकी निवृत्तिरूप मौन; ताकूं अंगीकार किया है। यामैं श्रुतिप्रमाण है:-"तिस परब्रह्मके साक्षात्कार होया इसपुरुषका हृदयग्रंथि औ सर्व संशय तथा सर्व कर्म निवृत्त होवै हैं" ॥ ४ ॥

(४) " जितना काल पुरुष जीवे उतनेकाल

गुरु, शास्त्र, ईश्वर, तीनोंकूं वंदना करे" यह शास्त्रमें कहा है। यातें कृतघ्नताकी निवृत्ति अर्थ गुरोंकी स्तुति करै हैं:—

दोहा—मात तात भ्राता सुहृद, इष्टदेव नृप प्रान ॥ अनाथ सुगुरु सबतें अधिक, दान ज्ञान विज्ञान ॥ ५ ॥

टीका:—अनाथदासजी कहे हैं:—परोक्ष प्रत्यक्ष ज्ञानके देणेवाले जो गुरु, सो माता, पिता, भ्राता, सुहृद कहिये प्रतिउपकारकूं न चाहकर उपकार करै, इष्टदेव कहिये अपणे कुलकरके पूज्य देव विशेष, नृप औ अपणे प्राण इन सबतें अधिक है; काहेतें माता आदि सर्व जन्मद्वारा सातिशय आदि अनेक दूषणकर दूषित जो विषयसुख ताके देणेवाले हैं औ गुरुज्ञानद्वारा निरतिशय जो मोक्षसुख, तिसके देणेवाले हैं. इति भावः ॥ ५ ॥

पुनः स्तुति कहै हैं:—

दोहा—प्रंगट पुहमि गुरु सुरद्युति, जन मन नलिन प्रकाश ॥ अनाथ कुमोदनि विमुखजन, कबहु नहोत हुलास ॥ ६ ॥

टीका:—अनाथदासजी कहै हैं:—सूर्यवत् प्रकाशतेहुए गुरु पृथ्वीतलमैं प्रसिद्ध हैं, क्याकरके प्रकाशतेहुए ? जिज्ञासु जनोंके हृदेरूप कमलोंको अपने वचनरूप किरणोंकर प्रफुल्लित करते हुए, अनधिकारी जनरूप जो कुमोदनीयां सो कबी आल्हादकूं पावैं नहीं । जैसें सूर्यके उदय हुयेतें उलूकको प्रकाश होवै नहीं तैसैं ॥ ६ ॥

अब गुरुकृत उपकारको अन्वय व्यतिरेकद्वारा दो दोहोंकरि, दिखावै हैं:—

दोहा—टेरत सद्गुरु मयाकरि, मोह नींद सोवंत ॥ जग्यो ज्ञानलोचन खुलै, सुपनो भ्रम विसरंत ॥ ७ ॥

टीका:—कृपाकर गुरोंके टेरत कहिये तत्त्वका उपदेश करतेहीं ज्ञान जग्यो कहिये स्वरूप ज्ञान निरावरण भयो, जो मोह कहिये अज्ञानकरि आवृतथा; इहां आवृतपदका अध्याहार है। यामें गीता वचन प्रमाण है:—"अज्ञानकरि आवृत जो स्वरूपज्ञान तिसकर जीव मोहित होवै हैं" अब इसका फल कहे हैं:—भ्रम विसरंत कहिये अहंकारादि अध्यासकी निवृत्ति होवै है. । दृष्टांत:-जैसें निद्रासैं उठे पुरुषका नेत्रके खुलणेंसें स्वप्न अध्यास निवर्त होवै है ॥ ७ ॥

दोहा—गुरुबिन भ्रमलग भूसियो, भेदलहेबिन स्वान ॥ केहरि बपु झांई निरखि, पर्‍यौ कूप अज्ञान ॥ ८ ॥

टीका:—गुरुकी प्राप्तिसें बिना अद्यपर्यंत भ्रमलग कहिये भ्रमरूप शरीर दोमें अध्यास करके भूस्यो कहिये मैं जन्मता मरता हों, कर्ता भोक्ता

हों, सुखी दुःखी हों, ऐसें अन्यथा बकता भया। दृष्टांतः—जैसें कूकर, शीसमहलमें प्रविष्ट हुवा अपने प्रतिबिंबोंकों आपसें भिन्न मानकर भुसें तैसें! अन्य दृष्टांतः—जैसें उन्मत्त सिंह, कूपजलमें अपणें प्रतिबिंबोकों देखके अपणे स्वरूपकूं न जानकर कूपमें गिरै तैसें ॥ ८ ॥

ननु ऐसे गुरु कहीं परोक्ष होवैंगे ? यह शंकाकर कहे हैंः—

दोहा—प्रगट अवनि करुनारनव, रतन ज्ञान विज्ञान ॥ वचन लहरि तनुपरसतें, अज्ञो होत सुजान ॥ ९ ॥

टीकाः—करुणाके समुद्र गुरु पृथ्वीपर प्रगट हैं। समुद्रकी जो उपमा दई गुरोंकों तामें हेतु कहे हैंः—लहरी स्थानापन्न वचनोंका तनु परसतें कहिये श्रोत्रेंद्रियसें संबंध होते हीं, रत्नस्थानापन्न ज्ञानविज्ञानद्वारा अज्ञो कहिये अज्ञानी जीव ते सुजान कहिये परमेश्वररूप होवै हैं ॥ ९ ॥

ननु गुरोंकी कृपातैंही ज्ञान प्राप्ति होवै तो वैराग्यादि ज्ञानके साधनोका कथन निष्फल होवैगा? या शंकाके होयां कहै हैं!—

दोहा—सूर दरस आदरस ज्यों, होत अग्नि उद्योत ॥ तैसैं गुरुप्रसादतैं, अनुभव निरमल होत ॥ १० ॥

टीका:—दृष्टांत:—जैसैं रविके दर्शनतैं रविके प्रसादकर आदरसे कहिये आतशीशीमैंही अग्नि प्रगट होवै है, अन्यमैं नहीं; तैसैं गुरोंकी कृपातैं निरमल कहिये संशय विपर्ययरूप मलसैं रहित बोध, शिष्यके हृदयमेंही होवै है, अन्यके नहीं; औ साधनसंपन्नहीं शिष्य कहा है, यातै साधन निष्फल नहीं ॥ १० ॥

ननु ऐसैं होवे तो गुरु, विषम दृष्टिवान् होवेंगे? या शंकाकों चंद्र दृष्टांतसैं दूरि करै हैं:—

दोहा—जिमिचंदहि लहि चंद्रमनि,

अमी द्रवत तत्काल ॥ गुरुमुख निरखत शिष्यके, अनुभव होत विसाल ॥ ११ ॥

टीकाः—दृष्टांतः—जैसैं चंद्रके प्रकाशकों पाइकर चंद्रकांतमणिहीं अमृतकों त्यागै है अन्य नहीं, सो कछू चंद्रमैं विषमता नहीं, काहेतैं चंद्र, समान सबकों प्रकाश करै है; तैसें गुरोंके दर्शनतैं विसाल कहिये ब्रह्मबोध शिष्यकोंही होवै है अन्यकों नहीं, सो कछु गुरुमें विषमता नहीं; काहेतें गुरोंका दर्शन सर्वकों समान है ॥ ११ ॥

(५) ऐसे गुरोंकी शरणकूं प्राप्तहोइकर शिष्यकों क्या करणीय है? इस आकांक्षाके होयां कहे हैः—शिष्यउवाचः—

दोहा—हौं सरनागत रावरे, श्रीगुरु दीनदयाल ॥ कृपासिंधु वंदूं चरन, हरो कठिन उरसाल ॥ १२ ॥

टीकाः—हे श्रीगुरो ! सर्व ओरतें निरास.हो

कर मैं दीन आपकी शरणकूं प्राप्त भया हों, जातैं आप दीनदयालु हो औ आपके चरणोंकूं बंदन करताहूं! औ जातैं आप कृपासागर हो, यातैं कठिण कहियेपीन जो मेरे हृदेमैं साल कहिये दुःख है सो हरो ॥ १२ ॥

(६) अब हृदयगत दुःखके हेतुकूं दिखावता हुवा, शिष्य कहे हैः—

दोहा--हौं अनाथ अतिसैं दुःखी, डर्‍यो देखि संसार ॥ बुडतहौं भवसिंधु मैं, मोहि करो प्रभु पार ॥ १३ ॥

टीकाः—हे प्रभो! मैं अनाथ कहिये मेरा कोई रक्षक नहीं, औ अतिशयकर दुःखी हूं। काहेतें, विषयसुखकूं मैनें त्याग्या है औ स्वरूपसुखकों प्राप्त भया नहीं औ जन्ममरणरूप संसारजन्य दुःखका स्मरणकर भयभीत भया हों, ऐसैं संसाररूप समुद्रमें डूबता जो मैं हों ता मुजकों पार कहिये संसारका पार जो परमेश्वर तहां प्राप्त करो ॥१३॥

पुनः हेतु अंतरकों दिखावै हैः—

दोहा--आसा तृष्णा चिंत बहु, ए डायन घरमांहि ॥ जीवन किहि विध होय मम, हृदे स्मृतीकूं खांहि ॥ १४ ॥

टीकाः—आशा कहिये वांछित विषयकी निरंतर इच्छा, तृष्णा कहिये विषयकी प्राप्तिसैं अतृप्त वृत्ति, चिंता बहु कहिये अप्राप्त विषयके साधनका चिंतनरूप औ प्राप्त विषयकी रक्षाका चिंतनरूप वृत्ति, यह त्रितय वृत्तिरूप जो डायन, अंतःकरणमें एक कालमै एकही वृत्तिकी न्यांईं उदय होवै है यातैं त्रितयवृत्तिरूप एकडायन कही, याके विद्यमान होयां ममजीवन कहिये मेरी ब्रह्मरूपकरी स्थिति, किसप्रकार होवै ! अर्थात् किसी रीतिसैं नहीं होवै, काहेतें स्थितिका साधन जो निरंतर तत्त्वानुसंधानरूप स्मृति ताकूं खाय कहिये ताकी विरोधी है ॥ १४ ॥

दोहा- कबहुं सुमति प्रकाश चित, कबहुं कुमति अधीन ॥ बिबनारीके कं-तज्यों, रहत सदा अति दीन ॥ १५ ॥

टीकाः—दृष्टांतः—जैसें परस्पर विरोधिनी उभय स्त्रियोंकर जीत्या पुरुष निरंतर दुःखी रहताहै; तैसें मैंबी चित्त कहिये अंतःकरणमें कदाचित् शुभनि-श्चयरूप वृत्ति औ कदाचित् अशुभनिश्चयरूप वृत्ति तिनमें तादात्म्य अध्यासकर दुःखी रहता हूं॥ १५ ॥

(७) अब शिष्य, स्वनिष्ठ आसुरी गुणोंकूं नदीरू-पकर वरनन करता हुआ दुःखके हेतुकूं कहे हैंः—

दोहा—नदि आसा शुभ अशुभ तट, भरी मनोरथ नीर ॥ तृषणा अमित त-रंग जिहिं, भरम भमर गंभीर ॥ १६ ॥

टीकाः—पूर्वोक्त आशारूप नदी है, जिणते डूबता है औ अविचारपूर्वक शुभाशुभक्रिया जाके किनारे हैं, भूत औ भावी पदार्थोंकूं विषय करणे-

वाले मनोराज्यरूप जलकर पूर्ण है, पूर्वोक्त तृष्णा-रूप अमित जिसमें लहरी हैं औ आत्मतत्वके अ-भाववाले अहंकारादिकोमैं आत्मतत्त्वकी प्रतीति-रूप भ्रम, सोई जामैं भमर कहिये आवर्त हैं ॥१६॥

दोहा--रागादिक, जलजंतु बहु, चिं-ता प्रबल प्रवाह ॥ धृत तरु हरनी तरन तिहिं, वेधत मो मन आह ॥ १७ ॥

टीका:– जामैं राग कहिये प्रीति औ द्वेषरूप मत्स्यकूर्मादि जलजीव हैं औ पूर्वउक्त चिंतारूप अति वेगवाली धारा है औ एकांत स्थानमें विष-यकी प्राप्तिसैं चित्तकी अविकारिकारूप धीरज सोई भया तरु तिसके हरनेमैं तरुण कहिये समर्थ है, ता नदीनें मेरे मनकों वेधित कहिये पीडित किया है ॥ १७ ॥

पुनः वही कहै हैं:–

दोहा-प्रबल जुगल शुभ अशुभ

गज, भिरत सुरोस बढाय ॥ अपनी भूल अनाथ हौं, पऱ्यो मध्य तिहिं आय १८

टीका:-दृष्टांत:- जैसें अतिबलवाले दो हस्ती क्रोधपूर्वक परस्पर युद्ध करते होवें तिनमें प्रवेशकर पुरुष दु:खकूं अनुभव करै, तैसे अपनी भूल कहिये अपने ब्रह्मात्मभावकों न जाणकर शुभ अशुभ संकल्पोमें तादात्म्य अध्यास करिकैं हौं अनाथ कहिये मैं दीन भया हों ॥ १८ ॥

(८) अब स्वमनगत चंचलताकूं दु:खका हेतु शिष्य दिखावे हैं:-

दोहा-कबहु न मन थिरता गहि, समझायोसें पोत ॥ जैसें मरकट वृच्छ-पर कबी न ठाढो होत ॥ १९ ॥

टीका:-दृष्टांत-जैसैं बाजीगरकर शिक्षित भयावी बंदर वृक्षपर आरूढहोकर निष्कंप रहे न-हीं; तैसैं पुन: पुन: चित्तकी एकाग्रताका यत्नभी

किया तथापि मेरा मन एकाग्रतोंकों न भजता भया ॥ १९ ॥

दोहा--चलदलपत्र पताकपट, दामनि कच्छ पमाथ ॥ भूत दीप दीपक सिषा, यों मनवृत्ति अनाथ ॥ २० ॥

टीका:--चलदल नाम पिप्पल वृक्षका है। यह षट् पदार्थ जैसें स्वभावसें चंचल हैं तैसें मेरे चित्तकी वृत्ति स्वभावसें चंचल है। अन्य स्पष्ट ॥२०॥

स्वभावसें चित्तकी वषयोंमें प्रवृत्तिबी दुःखकी हेतु है, या अर्थकों शिष्य दिखावे हैः--

दोहा--सहज स्वभाव अकासकूं, पावक झरप चलंत ॥ चंचल स्वतः अनादिको, मन रति विषय करंत ॥ २१ ॥

टीका:--जैसें साथि उत्पन्न होणेवाले स्वभावसैं पावकको झरप कहिये लाट, ऊर्ध्वकों जावे है; तैसें स्वरूपसें अनादिकालका चंचल जो मन, सो

भोग्य अभोग्य जो शब्दादि विषय तिनमैं स्वभावसैं प्रीति करै है ॥ २१ ॥

(९) अब चंचलताके हेतु जो संदेह, तिनको दिखावै हैः—

दोहा— जग साचो मिथ्या किधों, गृह्यो तज्यो नहिं जात ॥ गृही चचुंदर सर्प ज्यों, उगलत बनत नखात ॥ २२ ॥

टीकाः—जगत् सत्य है वा मिथ्या है ? मिथ्या है तोबी आपतें उत्पन्न होवै है वा किसी अन्यकर ? अन्यभी किसी जीवकृत है वा ईश्वरकृत है ? ईश्वरकृत जो होवै तौबी किसीका निवर्त हुवा है वा नहीं हुवा ? निवर्तबी पुनः प्रतीत होवै है वा नहीं ? इत्यादि संशयरूप हेतुतें हेयउपादेयरूपकर निश्चित होवै नहीं; यातैंबी क्लेशहीं है। दृष्टांतः—जैसे चचूंदर कहिये दुर्गंधी विशिष्ट मूषक सदृश जीवविशेष, ताकूं सर्प, मुखमैं ग्रहण करके पुनः ग्रहण

त्यागमैं अशक्त हुवा दुःखी होवै है तैसैं ॥ २२ ॥
(१०) पूर्व शिष्यनें करे जो प्रश्न, तिनका क्रमसैं गुरु समाधान करै हैंः— श्रीगुरुरुवाच.

दोहा—समाधान गुरु करत हैं, दया-युक्त कहि बोल ॥ मम बचनमैं आन तूं, आपत वाक्य अडोल ॥ २३ ॥

टीकाः—ग्रंथकार उक्तिः—गुरु, शिष्यके प्रश्नोंका उत्तर कहै हैं, क्या करके, दया दृष्टिपूर्वक वचन कह करके, गुरुउक्तिः—हे शिष्य ! मेरे बचनोमैं तूं विश्वास कर, काहेतैं गीतामें भगवानने कहा हैः—" श्रद्धावान् लभते ज्ञानं " कैसै वाक्य हैं ? आपत वाक्य कहिये वेदवाक्य हैं, काहेतैं " ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति " ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूप है यातैं ताकी वाणी वेदरूप है औ किसी प्रतिवादीकर खंडन नहीं हो सकते, यातैं अडोल हैं ॥ २३ ॥
(११) पूर्व, शिष्यने कह्या जो मेरा मन चंचल

है या शिष्यकी उक्तिका अनुमोदन करते हुये गुरु, चंचलताकी निवृत्तिका उपाय कहै हैं:—

दोहा—निःसंशय मन है चपल, दुह-कर गति अति आहि ॥ गुरु श्रुतिशुद्ध अभ्यास कर, निश्चल कीजत ताहि २४

टीका:—हे शिष्य! तेने जो कहा मन चंचल है औ अतिशय दुःखके करणेवाली है गति कहिये प्रवृत्ति जिसकी, यामैं संदेह नहीं; तथापि गुरुमुखात् श्रुतिशुद्ध कहिये श्रुतिप्रतिपाद्य जीव ब्रह्मका अभेदरूप अर्थ, तिसका श्रवण करकै पुनः पुनः चिंतनरूप अभ्यास कर, तिसी अर्थमैं तिस चित्तकी स्थिति कर सो मन निश्चल करिये है। इत्यर्थः॥ २४॥

(१२) अब सुगम उपायके जाननेकी इच्छा चित्तमैं धारकर अभ्यासमैं अपनैं अनधिकारका प्रगट करता हुवा शिष्य, प्रार्थना करै है:—शिष्य उवाच.

दोहा–हौं विषयी अति अजित मन नहिन होत अभ्यास ॥ तातैं प्रभु तुम पद सरन, हरहु कठिण जग त्रास ॥२८॥

टीका:–हे प्रभो ! आपनै जो अभ्यास बताया सो मेरेसैं नहीं होता है ! काहेतैं अभ्यास निर्विषय औ जितचित्त पुरुषसैं होवै है, मैं विषयासक्त औ अति अजित चित्त हूं, तातैं आपके चरनोंकी शरण हूं, आप सुगम उपाय बतायकर जन्मादि मृत्युपर्यंत जो जगत्जन्य दुःखकी स्मृति, तिसतैं उत्पन्न भया जो कठिन त्रास कहिये पीनभय, ताके निवृत्तक हो इत्यर्थः ॥ २५ ॥

(१३) अब शिष्यकी उक्तिका अनुवाद करते हुए गुरु, सुगम उपाय कहे हैं:–श्रीगुरुरुवाच.

दोहा–सुन शिष्य उत्तम सीषकों, जो चाहत निजश्रेय ॥ जग बंधन इच्छित मुच्यो, तौ सतसंग करेय ॥ २६ ॥.

टीकाः—हे शिष्य ! जो पुरुष निज श्रेय कहिये स्वस्वरूप सुखके जानवैकी इच्छा करते हैं औ अविद्या तत्कार्य जगत्‌रूप बंधकी मुच्यो इच्छित कहिये निवृत्तिकी इच्छा करै हैं, सो उत्तम सीख कहिये महावाक्यका उपदेश, ताकों सुन कहिये श्रवण करके कृतार्थ होवै हैं; औ तूं आपकों यामें असमर्थ देखता है तौ सत्‌संग करेय कहिये सज्जनोंका संग कर ॥ २६ ॥

दोहा—गहै चचूंदर अहि मरे, तजै द्रगनकी हान ॥ जल पायै सुख होत है, नर सत संग प्रमान ॥ २७ ॥

(१४) ग्रंथकार उक्तिः—

सोरठा—श्रीगुरु दीनदयाल, असरन सरन उदार अति ॥ जन अनाथ उरसाल, कृपा करत चाहत ह्र्यो ॥ २८ ॥

टीकाः—अनाथदासजी कहे हैंः—जन कहिये

शिष्यके हृदेमें शाल कहिये दुःख ताकूं गुरु कृपाकर निवृत्त किया चाहते हैं, काहेतें दीन पुरुषोमें दयालु हैं औ अशरण कहिये सर्व ओरतें निरास जो जिज्ञासु तिनकी शरण कहिये आसरा हैं औ आत्मरूप धनके दाता हैं, यातें अति उदार हैं ॥२८॥

दोहा—प्रथम शिष्य संदेह कहि, भयो सु आप अदृष्ट ॥ सुख दुःखकर साक्षात् जिम, होहिं सुदृष्ट अदृष्ट ॥ १ ॥

इतिश्री विचारमालायां शिष्यआशंका वर्णनं नाम प्रथमविश्रामः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ संतमहिमावर्णनं नाम

द्वितीय विश्रामप्रारंभः ॥ २ ॥

सत्संगकी इच्छावाला हुवा शिष्य संतोंके लक्षणकूं पूछे हैः— शिष्य उवाच.

दोहा—कहो कृपाकरि साधुके, लच्छ-

न श्री गुरुदेव ॥ जाहि निरखि हित आपनो, करौं भलीविध सेव ॥ १ ॥

टीका:—हे श्रीगुरो ! कृपा करके साधुके लक्षण कहो, काहेतें जाहि निरख कहिये जिन लक्षणोंकों माहात्मोंमें देखकर अपणे हित कहिये कल्याणके अर्थ भली प्रकारसें तिनके सेवादि करों ॥ १ ॥

(१५) साधुलक्षण वर्णनं. श्रीगुरुरुवाच.

दोहा—अति कृपालु नहि द्रोह चित्त, सहनशीलता सार ॥ सम दम आदि अकाम मति, मृदुल सर्व उपकार ॥ २ ॥

टीका:—अति कृपालु कहिये प्रयोजन बिना कृपा करै हैं, यातेंही अद्रोहचित्त कहिये चित्तकर किसीसें द्वेष नहीं करते। पुनः कैसे हैं:—सहनशील कहिये मानअपमानादि द्वंद्वोंके संहारनेवाले हैं, सहनशील स्वभावहीं सार कहिये श्रेष्ठ है यह जाने हैं औ शम कहिये मनका निग्रह, दम कहिये चक्षु-

रादि इंद्रियोंका निग्रह, आदिपद करके उपरति आदिकोंका ग्रहण करणा, तिनोवाले हैं। ननु शम दम आदि मुक्ति इच्छु मुमुक्षुके लक्षण कहे हैं, विद्वान्के नहीं? ऐसें मत कहोः—काहेतें अकाम मति कहिये अंतःकरणमें हेयउपादेयकी इच्छातें रहित हैं औ मृदुल कहिये कोमल स्वभाव हैं, या सर्व उपकार कहिये शरणागतोंका योगक्षेम करे हैं। योगक्षेम नाम अप्राप्तकी प्राप्ति औ प्राप्तकी रक्षाका है ॥ २ ॥

पुनः संतलक्षणं.

दोहा—आतमवितज्ञ अनीहसुचि, निःकंचन गंभीर ॥ अप्रमत्त मत्सररहित, मुनि तपसांत सुधीर ॥ ३ ॥

टीकाः—आतमवित् कहिये अन्वयव्यतिरेकयुक्तिकंर पंचकोश औ त्रिते शरीरोतें भिन्न, त्रिते अवस्थाका प्रकाशक, चिन्मात्र आत्मा, जिनो न

जान्या है। सो अन्वय व्यतिरेकरूप युक्ति यह है:— स्वप्न अवस्थामें स्वप्न साक्षीरूपकर जो आत्माका भान सो आत्माका अन्वय (मालामें सूतकी न्यांई अनुवृत्ति) है, आत्माके भान भये जो स्थूल देहका अभान सो स्थूलदेहका व्यतिरेक (मणिकेकी न्यांई व्यावृत्ति) है, औ सुषुप्तिमें ता अवस्थाके साक्षीरूपताकर आत्माकी प्रतीति सो आत्माका अन्वय है औ लिंगदेहका अभान सो लिंगदेहका व्यतिरेक है औ समाधिमें सुखस्वरूपकर जो आत्माका भान सो आत्माका अन्वय है औ अविद्यारूप कारणदेहकी अप्रतीति सो कारणदेहका व्यतिरेक है। यातें त्रिते शरीरोतें आत्मा भिन्न है। पंचकोश त्रिते शरीरोंके अंतर्गत हैं, यातें कोशोतें भिन्न विवेचन नहीं किया। इहां प्रमाणः—“ त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ॥ तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः [१] तीन धामरूप तीन अवस्थामें जो भोगके करण हैं औ

भोक्ता है औ भोग है, तिनतें विलक्षण साक्षी चिन्मात्र सदाशिव मैं हूं " पुनः संत कैसे हैं? अनीह कहिये व्यर्थ चेष्टासैं रहित हैं, शुचि कहिये अंतर-राग द्वेषरूप मलतें रहित हैं औ बाह्य जल मृत्तिकादिकोंकर शुद्ध रहे हैं, निःकंचन कहिये बाह्य संग्रहतें रहित हैं, गंभीर कहिये अन्यकर अज्ञात आशय हैं, अप्रमत्त कहिये प्रमादसैं रहित हैं, मत्सर कहिये बखीली (ईर्षा) तासैं रहित हैं, मुनि कहिये मननशील; तप शांत कहिये शांतिरूपहीं जिनका तप है इहां प्रमाणः— श्लोक.

शांतेः समं तपो नास्ति संतोषान्न परं सुखम् ॥ तृष्णाया नपरो व्याधिर्न धर्मो दयया परः ॥ १ ॥

फिर कैसे हैं:—सुधीर कहिये सुष्ठु धैर्यवान् हैं ॥ ३ ॥

पुनः वही कहै हैं:—

दोहा—जित षट्गुन धृति मान कवि,

मानद आप अमान ॥ सत्यप्रीति अ-
नीतगति, करुनासील निधान ॥ ४ ॥

टीकाः—षद्गुण कहिये षड्उरमी, तिनोंके धृत कहिये धारणेवाले जो देह प्राण मन सो जीते हैं, मान कहिये बेदरूप प्रमाणतामैं कवि कहिये तात्पर्य रूपकर सर्व अर्थके जाननेवाले हैं, मानद कहिये व्यवहारदशामैं स्वभिन्न सर्वकों मान देवै हैं औ अपमान नहीं चाहे हैं औ सत्य संभाषणमैं निश्चय है काहेतैं सत्यमूलकहीं सर्व धर्म हैं ऐसैं जाने हैं, मिथ्या संभाषण जिनतैं दूर भया है, करुणारूप जो शील कहिये आचार ताके निधान कहिये खाणी है, काहेतैं पामर औ विषयी औ जिज्ञासु जो पुरुष, तिन सर्वपर कृपा करै हैं। इति भावः ॥ ४ ॥

पुनः वहा कहै हैंः—

दोहा—उस्तुति निंदा मित्र रिपु, सुख

दुःख ऊच रुनीच ॥ ब्रह्म त्रिन अमृत गरल, कंचन काच न वीच ॥ ५ ॥

टीकाः—स्तुति कहिये स्वनिष्ठ गुणोंका अन्यकर परिकथन तथा स्वनिष्ठ अवगुणोंका अन्यकर परिकथनरूप निंदा औ प्रतिउपकार कर्ता मित्र तथा आपणेपर अपकार कर्तारूप शत्रु औ पुण्य वशतें इष्ट पदार्थके संबंधकर अंतःकरणके सत्वका परिणाम हर्ष वृत्तिरूप सुख तथा प्रतिकूल पदार्थके संबंधकर अंतःकरणके रजोगुणका परिणाम विक्षिप्तवृत्तिरूप दुःख औ जातिगुण आयुकर आपणेसें अधिक जो ऊच तथा जातिगुण आयुकर आपणेसें नीच, ब्रह्म औ तृण तथा अमृत औ विष तथा कंचन औ काच कहिये कच विशेष; इत्यादिक सर्व पदार्थोंमैं यद्यपि लौकिक दृष्टिसें विषमता प्रतीत होवै है तथापि वे मनकृत होणेतें मिथ्या हैं औ शास्त्रीय दृष्टिसें सर्व पदार्थोंमै अनात्मत्वतुल्य है औ ज्ञान निवर्त्यत्वबी तुल्यहीं है ॥ ५ ॥

दोहा—समदर्शी शीतलहृदे, गत उ-द्वेग उदार ॥ सूछम चित्त सुमित्र जग, चिदवपु निरहंकार ॥ ६ ॥

टीकाः—यातें तिनमें महात्मा समदर्शी हैं, इसीतें शीतल हृदय हैं गत कहिये निवृत्त भया है उ-द्वेग कहिये क्षोभ जिनतें, त्यक्त वस्तुका पुनः ग्रहण करें नहीं यातें उदार हैं, सूक्ष्म ब्रह्मकूं विषय करणेंतें सूक्ष्म चित्तवाले हैं। सो श्रुतिनें कहा हैः—"दृश्यते त्वग्रया बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः। अस्यार्थः सूक्ष्मदर्शीयोनें शास्त्रसंस्कारसहित शुद्ध औ सूक्ष्म बुद्धिकर ब्रह्म देखीता है कहिये निरावर्न करीता है"। औ फिर कैसे है? जगत्के सुष्ठु मित्र है काहेते सर्वप्राणियोमै निरहेतुक प्रीति करें हैं, औ चिद्वपु कहिये चेतनहीं है शरीर जिनोंका औ देह आदिकोमै परिच्छिन्न अहंकारतें रहित है ॥ ६ ॥

पुनः वही कहै है.

दोहा–सर्व मित्र निःकल्पमन, त्यागी अति संतोष ॥ ऐश्वर्य विज्ञान बल, जानत बंध रु मोष ॥ ७ ॥

टीकाः–सर्व मित्र कहिये सर्व प्राणी जिनके मित्र हैं काहेतें सर्वकर आत्मा होनेतें औ कल्पनातैं रहित चित्त हैं औ अतित्यागी हैं काहेतें धन दारा आदिकोंका त्याग अतिसुगम है औ अनात्मामें आत्म अध्यासका त्याग अतिदुष्कर है सो जिनोंने कीया है यातें औ यथा लाभकर संतुष्ट हैं, अणिमादि सिद्धिरूप ऐश्वर्यकर संपन्न हैं औ विज्ञानके बलकर इस रीतीसैं जाने हैंः–जैसे अहंकारादिकोंकी प्रतीतिरूप बंध आत्मा में मिथ्या है तैसें तिसकी निवृत्तिरूप मोक्षभी मिथ्या है, काहेतें श्रुति कहती हैः–"न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः॥ न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमा-

र्थता॥ १ ॥ " अस्यार्थः ॥ " निरोध नाश, उत्पत्ति देहसंबंध, बद्ध सुख दुःख धर्मवाला, साधक श्रवणादि करनेवाला, मुमुक्षु साधनचतुष्टयसंपन्न, मुक्त अविद्यारहित, ये संपूर्ण वास्तव नहीं हैं" ७

दोहा—तनु मतिगति आनंदमय, गुनातीत निष्प्रेह ॥ विगत क्लेश स्वच्छंदमति, संतां भूषण एह ॥ ८ ॥

टीकाः—मतिगति कहिये बुद्धिवृत्ति तनु कहिये सूक्ष्म है जिनोंकी औ आनंदाकार होनेतें आनंदरूप हैं;कैसा आनंद है ? सत्वादि तीन गुनों तें परे है;याही तें निष्प्रेह कहिये अन्यविषयकी इच्छातें रहित हैं। सो महिम्न में कहा है:-"नहि स्वात्मारामं विष्यमृगतृष्णा भ्रमयति" " अपने आत्मामें आरामी पुरुषकूं यह मृगतृष्णाकी न्याई जो शब्दादिक विषय सो भ्रमावें नहीं" औ अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष अभिनिवेशरूप पंच

क्लेशतें रहित हैं। अविद्या द्विधा हैः—एक कारण अविद्या है, अपर कार्य अविद्या है, इहां अविद्या शब्दकर कार्य अविद्याका ग्रहण है; सो चार प्रकारकी हैः—अनित्यमें नित्यबुद्धि, दुःखमें सुखबुद्धि अशुचिमें शुचिबुद्धि औ अनात्मामें आत्म बुद्धि। अनित्य जो ब्रह्मादि लोक तिनमें नित्यबुद्धि [१] दुःखका साधन होनेतें दुःखरूप जो कृषि वाणिज्यादि तिनमें सुखबुद्धि [२] अशुचि जो पुत्र स्त्री आदिकोंके शरीर तिनमें शुचिबुद्धि[३] अनात्मा जो अपना शरीर तामें मुख्य आत्मबुद्धि [४] यह अविद्या है औ अस्मिता नाम सूक्ष्म अहंकार, राग नाम प्रीति, द्वेष नाम विरोध, अभिनिवेश नाम अति आग्रह, इन पंच क्लेशनतें रहित हैं। पुनः अकुंठित बुद्धि हैं, अर्थात् तम रजो करकै जिनकी बुद्धि रुकती नहीं। अब प्रकरणकों समाप्त करते हुए गुरु कहे हैंः—हे शिष्य ! पूर्वोक्त लक्षण संतोंके भूषण हैं॥ ८ ॥

(१६) हे भगवन् ! संतोंके एतावन्मात्रहीं लक्षण हैं ? या आकांक्षाके भये अन्यभी हैं यह कहे हैं:-

दोहा-स्वसंवेद्य नहि कहि सकों; लच्छन संत महंत ॥ परसंवेद्य कहे कछु, संगप्रताप कहंत ॥ ९ ॥

टीका:-हे शिष्य ! महानुभाव जो संत हैं तिनके दो प्रकारके लक्षण हैं:-एक स्वसंवेद्य हैं, अपर परसंवेद्य हैं । अन्य करके जो जाने जावैं सो परसंवेद्य कहिये हैं,आपकर जो जाने जावैं सो स्वसंवेद्य कहिये हैं, सो कौन हैं? या आकांक्षाके हुए कहे हैं:-मृत्युके समीप स्थित भया भी चित्तमें भय न होवै औ चिज्जड ग्रंथिकी निवृत्ति औ निरावरण स्वरूपानंदकी उपलब्धि इत्यादिक जो स्वसंवेद्य लक्षण हैं सो हम कही नहीं सकते,शेष जो परसंवेद्य लक्षण हैं सो स्वल्पसैं हमनैं कहे हैं । अब सत्संगका माहात्म्य कहै हैं श्रवण कर ॥ ९ ॥

(१७) अब विश्रामकी समाप्तिपर्यंत फलकथनद्वारा सतसंगका महात्म्य कहे हैंः—

दोहा—सत्संगति निजकल्पतरु, सकल कामना देत ॥ अमृतरूपी वचनकहि, तिहूं ताप हरिलेत ॥ १० ॥

टीकाः—वांछित फलप्रद होनेतैं सतसंगहीं कल्पवृक्ष है, जातैं सकल पुरुष कीयां इस लोकके धन यशादि पदार्थकूं विषय करणेवालीयां औ परलोकके स्वर्ग सुखादिकोंकूं विषय करणेवालीयां सकल कामना पूर्ण करै है। निष्काम पुरुषके अमृतकी न्याई मधुर वचन कहिकरि ज्ञानकी उत्पत्तिद्वारा अध्यात्म अधिभूत अधिदैव तीन ताप दूर करै है। क्षुधा आदिक तैं जो दुःख होवै सो अध्यात्म कहिये है। चोर व्याघ्र सर्पादिकोंतैं जो दुःख होवै सो अधिभूत कहिये है। यक्ष राक्षस प्रेत ग्रहादिक औ सीत वात आतपतैं जो दुःख होवै सो अधिदैव कहिये है ॥ १० ॥

दोहा—पदवंदन तन अघ हरण, तीरथमय पद दोय ॥ संभाषन चित्त शांतकर, कृपा परम पद होय ॥ ११ ॥

टीका:—संतचरनोंके ताईं जो वंदन सो शरीरनिष्ठसंचित पापनकों हरे है, काहेतें संत चरणोंकूं तीर्थरूप होनेतें; सोई भगवान्‌ने एकादशमें कहा है:—"सात्विक गुणधारी नरदेहा, शुद्ध करों ता चरनन खेहा" पुनः बोलणा जिनका चित्तकूं शांत करै है औ जिनकी कृपासै परमपदकी प्राप्ति होवै है, सोई कहा है:—"ज्ञानं विना मुक्तिपदं लभते गुर्वनुग्रहात्" ॥ ११ ॥

अब शिष्य पूछे है:—हे भगवन्! संतसंगमें सुख कितनाक है? तहां गुरु कहे हैं:—

दोहा—सतसंगति सुखसिंधुवर, मुक्ता निजकैवल्य ॥ आशय परम अगाध अति, पैठे मनदल मल्य ॥ १२ ॥

टीका:—हे शिष्य! सत्संग सुखका समुद्र है, महात्माका जो आशय कहिये गूढ अभिप्राय है सो तिसमैं गंभीरता है, जीतिया है मन जिनों-नैं सो पुरुष ऐसे समुद्रमैं प्रवेश करके कैवल्य मोक्षरूप मोतीकूं पावै हैं ॥ १२ ॥

(१८) अब शिष्य पूछे हैः—हे गुरो! इतनैं सुख मैनें वेदमैं श्रवण करे हैं:—समग्र पृथ्वी सुखकी चक्रवर्ती राजामैं समाप्ति हैं, चक्रवर्तीतैं सौगुन अधिक सुख मानव गंधर्वोंका है, तिनतैं शतगुणाधिक देव गंधर्वोंका है, तिनतैं शतगुणाधिक पितृदेवनका है, तिनतैं शतगुणाधिक सुख आजानदेवनका है, तिनतैं शतगुणाधिक कर्मदेवनका है, तिनतैं शतगुण अधिक मुख्य देवनका है तिनतैं शतगुण अधिक इंद्रका है, इंद्रतैं शतगुण अधिक देवगुरु बृहस्पतिका है, तिसतैं शतगुण अधिक प्रजापतिं (विराट्) का है. प्रजापतितैं शतगुण अधिक सुख ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) का है, तिनतैं अ-

पार मोक्ष सुख है। सत्संगजन्य सुख किस सुखके तुल्य है यह आप कहो ? या आकांक्षाके होयां इन संपूर्णातें अधिकं है, यह गुरु कहे हैं:—

दोहा—सत संगति सुख पलक जो, मुक्ति नतास समान ॥ ब्रह्मादिक इंद्रादि भू, निपट अल्प ये जान ॥ १३ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! पलमात्र सतसंगजन्य जो सुख है तिसके समान मोक्षसुखभी नहीं तौ ब्रह्मादिकोंका औ इंद्रादिकोंका औ कहिये चक्रवर्तीका सुख तौ अतितुच्छ है, तिसके समान कैसैं होवै, ऐसे जान ! ननु परतंत्र औ परिच्छिन्न औ कदाचित् होनेवाला ऐसा जो सत्संगजन्य सुख, तिसके समान सर्व वेदांतोंकर प्रतिपाद्य निरतिशय मोक्षसुख नहीं है, यह कथन असंगत है?तहां सुनोः—सफल पदार्थ स्तुतिके योग्य होवै है, निष्फल पदार्थ स्तुतिके योग्य होवै नहीं; मोक्षसैं मोक्षांत

होवै नहीं यातें निष्फल है औ सत्संगसैं ज्ञानद्वारा अनेक पुरुषोंकूं मोक्ष प्राप्त होवै है यातें वह सफल है, इस अभिप्रायसैं मोक्षतें अधिक कहा है॥ १३॥

(१९) अब शिष्य कहे हैः—हे भगवन् ! जगत् अनर्थरूप जो पासी तिसकी निवृत्ति अर्थ अनेक कर्मका अनुष्ठान मैनें कियाबी है तथापि निवृत्ति न भयी, यातें आप कोई अन्य उपाय कहो ? या आकांक्षाके होयां शिष्यकी उक्तिका अनुवाद करते हुये गुरु कहे हैः—

दोहा—जगत मोहपासी अजर, कटे न आन उपाय॥ जो निज सतसंगत करत, सहज मुक्त हो जाय॥ १४॥

टीकाः—जगत् मोह कहिये अविद्या तत्कार्यरूप पासी सो यद्यपि अजर है औ अन्यकर्म उपासनारूप उपायकर निवृत्त नहीं होवै है तथापि जो पुरुष निरंतर सत्संग करता है सो सत्संगसैं

ज्ञानद्वारा अनायासतैं तापासीतैं मुक्त होवै है१४

अब शिष्य कहै हैः—सत्संगतैं ज्ञानद्वारा मोक्ष प्राप्त होवै है यह आपने कहा सो मैंने निश्चय किया, और धर्मादि जो तीन सो सत्संगसैं प्राप्त होवै हैं वा नहीं यह कहो ? तहां गुरु कहे हैंः—

दोहा—कामधेनु अरु कल्पतरु, जो सेवत फल होय ॥ सत्संगति छिन एक मैं, प्रानी पावै सोय ॥ १५ ॥

टीकाः—हे शिष्य! कामधेनु अरु कल्पतरुके चिरकालपर्यंत सेवन कीयेतैं जो धर्म अर्थ कामरूपफल प्राप्त होवै है, सो फल सत्संगमैं प्राप्त जो पुरुष सो एक छिनमैं पावै है ॥ १५ ॥

पुनः शिष्य कहै हैः—हे गुरो ! कल्पवृक्ष अरु कामधेनु यद्यपि बहुकाल सेवन कीयेतैं फल देवै है, यातैं सत्संगके तुल्य नहीं, परंतु पारसमणि तो तत्काल फलप्रद होनेतैं सत्संगके तुल्य होवैगा ? या आक्षेपके भयां कहे हैंः—

दोहा—पारसमैं अरु संतमैं, बडोअंतरो जान ॥ वह लोहा कंचन करै, यह करे आपसमान ॥ १६ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! पारसमैं अरु संतमैं बडी विषमता है ऐसे जान तूं, काहेतैं वै जो पारस है सो लोहकूं कंचन तो करे है परंतु पारस नहीं करसके है औ महात्मा जो हैं सो जैसैं आप ब्रह्मरूप हैं तैसैं जिज्ञासुकूं ब्रह्मरूप करे हैं; यातैं पारसतैं अधिक हैं ॥ १६ ॥

शिष्य कहेहैः—हे भगवन् ! सत्संगकी प्राप्ति-अर्थ जो क्रिया है ताकरभी कछु फल होवै है । नवा ? तहां गुरु कहे हैंः—

दोहा—विधिवत् यज्ञ करत सदा, जे द्विज उत्तम गोत॥ साधुनिकट चलिजा-तहीं, सो फल पग पग होत ॥ १७ ॥

टीकाः—जौनसे पौलस्त्यादि गोत्रवाले उ-

त्तम द्विज कहिये अष्ट वर्षतें पूर्व जिनका यज्ञो-पवीतरूप संस्कार भया है ऐसे ब्राह्मण, जो वेदकी आज्ञापूर्वक सदा यज्ञ कहिये नित्याग्निहोत्ररूप यज्ञ करै हैं, तिसका जो फल शास्त्रमें कहा है, सो साधुके समीप गमन करतेहुए एक एक चरण पृथ्वीपर धारणकर होवै है ॥ १७ ॥

दोहा–दया आदि दे धर्म सब, जप तप संयम दान ॥ जो प्राप्ती इन सबनतैं, सो सत्संग प्रमान ॥ १८॥

टीका:–जप कहिये गायत्री औ प्रणवादिकोंका यथाविधि पुनः पुनः उच्चारणरूप, तप कहिये स्वधर्मका अनुष्ठानरूप, संयम कहिये निषिद्ध औ उदासीन क्रियातें कर्मेंद्रियोंका निरोधरूप, दान कहिये प्रतिदिन द्रव्यादिकोंका परित्याग, एतद्रूप सर्व धर्मोंके कीये जो फल प्राप्त होवै है सो सत्संगतै प्राप्त भया जान । काहेतें दयाआदि सर्व धर्मोंकी प्राप्ति सत्संगतें होवै है ॥ १८ ॥

(२०) अब शिष्य कहे हैं:—हे भगवन् ! अंतःकरणकी शुद्धिअर्थ सत्संगभिन्न तीर्थोंका सेवन कर्तव्य है ? या आकांक्षाके होयां कहे हैं:—

दोहा—तीरथ गंगादिक सबै, करि निश्चय सेवै जु ॥ सो केवल सतसंगमैं, प्रानी फल लेवैजु ॥ १९ ॥

टीका:—अंतःकरणकी शुद्धिकी इच्छा करके गंगादि तीर्थोंका सेवन कियेसैं जो फल प्राप्त होवै है, सो अंतःकरणकी शुद्धिरूप फल सत्संग करणे मात्रसैं यह पुरुष पावे है ॥ १९ ॥

(२१) हे भगवन् ! चित्तकी एकाग्रता अर्थ तो हिरण्यगर्भादि देवनकी उपासना करणीय है ? तहां गुरु कहै हैं:—

दोहा—ब्रह्मादिक देवा सकल, तिन भाजि जो फल होत ॥ सत्संगतमैं सहजहीं, वेगहिं होत उद्योत ॥ २० ॥

टीकाः—हिरण्यगर्भसैं आदिलेकर देवनकी उपासनातैं चित्तकी एकाग्रतारूप फल होवै है, सो चित्तकी एकाग्रतारूप फल सत्संगमैं अनायासतैं उदय होवै है ॥ २० ॥

(२२) पुनः शिष्य कहै हैः—ब्रह्म आत्माके अभेदअर्थ बहु विद्याका अध्ययन कर्तव्य है ? या शंकाके होयां कहे हैंः—

दोहा—वेदादिक विद्या सबै, पावै पढै ज़ु कोय ॥ सत्संगति छिन एक मैं, होयसू अनुभव लोय ॥ २१ ॥

टीका—ऋग् यजुर् साम अथर्वणरूप जो वेद हैं तिनसैं आदिलेकर आयुर् आदिक चार उपवेद षट् व्याकरणादि वेदके अंग, ब्रह्मादि अष्टादश पुराण, न्याय मीमांसा औ धर्मशास्त्र इन संपूर्णोंके अवलोकन कीयेतैं जो ब्रह्म आत्माका अभेद निश्चयरूप फल होवै है; सो सत्संगकर एक छिनमैं

पुरुष अनुभव करै है। सोई कहा है:—श्लोक "श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रंथकोटिभिः॥ ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम्" पुनः यही अर्थ जनक औ अष्टावक्रके संवादकर स्पष्ट कहा है। या श्लोकका अर्थ यह है:—"कोटि ग्रंथोंकर जो ब्रह्मात्माका अभेदरूप अर्थ कहा है सो अर्ध श्लोककर कहता हूं, ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है, औ जीव ब्रह्मरूप है"

(२३) अब सत्संगकों सुमेरु अरु कैलासतें अधिक वर्णन करै हैं:—

दोहा—किं सुमेरु कैलास किं, सब तरु तरै रहंत॥ सत्संगति गिरिमलयसम, सब तरु मलय करंत॥ २२॥

टीका:—जैसें गिरिमलय कहिये सुगंधिवाला पर्वत, अपणेमें स्थित वृक्षोंकूं मलय कहिये सुगंधिवाले करै है, तैसें संतबी स्वसमीपवर्ती पुरुषोंमें

स्ववर्ती श्रेष्ठ गुण प्राप्त करे हैं, यातें मलयगिरिके समान हैं। ननु सर्व देवोंका निवासस्थान औ स्वर्णमय मेरु तैसैंही रजतरूप जो कैलास तिनके समान संत, किं उना होऐ? तहां सुनोः—यद्यपि मेरु स्वर्णमय है तथापि क्या है औ यद्यपि कैलास रजतमय है तथापि क्या है, काहेतें स्ववर्ती वृक्षोंको स्वर्ण किंवा रजतरूप नहींकर सकेहैं, यातें संतोंकी तुल्यताके योग्य नहीं ॥ २२ ॥

(२४) अब उक्त अर्थमें प्रमाणरूप जो वसिष्ठ वचन, तिसको अर्थतें पढे हैंः—

दोहा—मुक्ति द्वारपालक चतुर, सम संतोष विचार ॥ चौथो सतसंगत धरम, महा पूज्य निर्धार ॥ २३ ॥

टीकाः—जैसें राजमंदिरमें द्वारपाल अन्य पुरुषका प्रवेश करावे हैं, तैसैं मुक्तिरूप मंदिरमें प्रवेश करावणेवाले यद्यपि सम, संतोष, विचार, सत्संग,

एह चार हैं; तथापि चतुर्थ जो सत्संगरूप धर्म सो विद्वानोंनें महापूज्य निर्णय कीया है॥ २३॥

सोई उत्तर दोहेकर दिखावे हैं:—

दोहा— मुक्ति करन बंधन हरन, बहुत यतन जग भव्य॥ पैयह कोटि उपाय करि, सत्संगत कर्तव्य॥ २४॥

टीका:—यद्यपि मुक्तिके करनेवाले औ बंधनोंके हरनेवाले बहुत यत्न शास्त्रोंमें कहे हैं, तथापि भव्य जो विद्वान् तिनोंनें एह निर्णय कीया है, अनेक उपायकर मुमुक्षुनें सत्संगहीं करणीय है॥२४॥

तामें हेतु कहे हैं

दोहा—और धर्म जेतिक जगत, आहि सकाम स्वरूप॥ साधन ज्ञान उद्योतको, है सत्संग अनूप॥ २५॥

टीका:—और यावत् धर्म जगत्में हैं सो इस लोक औ परलोकका जो विषयजन्यसुख तिसके

देनेवाले हैं, यातैं सकामरूप हैं, औ उपमासैं रहित जो सत्संग है सो ज्ञानकी प्रगटताका साधन है२५

(२५) अबताकी श्रेष्ठतामैं प्रणाम कहैं हैंः—

दोहा—श्रुति स्मृति श्रीमुख कह्यौ, सत्संगत जग सार ॥ अनाथ मिटावै विषमता, दरसावै सुविचार ॥ २६ ॥

टीकाः—ग्रंथकार उक्तिः—श्रुतिस्मृतिमैं औ भागवतमैं श्रीकृष्ण देवनेभी यही कहा हैः—"इस जगत्मैं सत्संगहीं सार है, काहेतैं सुष्ठु जो ब्रह्मविचार ताकूं दिखायके भेद बुद्धि दूर करे है"॥२६॥

दोहा—द्वुतियो माल विचारको, तिलकसहित विश्राम ॥ इती भयो कह संतगुण, हैं जो आत्माराम ॥ २७ ॥

इति श्री विचारमालायां संतमहिमावर्णनं नाम द्वितीयविश्रामः समाप्तः ॥ २ ॥

अथ ज्ञानभूमिकावर्णनं नाम
तृतीयविश्रामप्रारंभः ॥ ३ ॥

(२६) अब ज्ञान कीयां सप्त भूमिका दिखावणेकी इच्छा कर तृतीय प्रकरणका आरंभ कर्ते हुए ग्रंथकार, आदिमैं शिष्यकी उक्ति कहे हैं:—
शिष्य उवाच.

दोहा—भो भगवन् गुन साधुके, मैं जाने निर्धार ॥ निरपेच्छक संकल्प गत, हैं सुखसिंधु अपार ॥ १ ॥

टीका:—हे भगवन्! आपने कहा जो संत अपेक्षामैं रहित हैं औ सुखके समुद्र हैं, सो इत्यादि संतोंके लक्षण मैंनें निश्चयकर जाने हैं ॥ १ ॥

अब जिस अभिप्रायकूं चित्तमैं धारकर शिष्यने कहा, सो अभिप्राय प्रगट करे हैं:—

दोहा—हौं कामी वै सुमति चित, मो-

हिन आवैं बूझ ॥ कैसैं हित उपदेशकी, परे गैल निज सूझ ॥ २ ॥

टीकाः—हे भगवन्! काम नाम विषयोंका है तिनकी इच्छावाला मैं हुं यातें कामी हुं, वे महात्मा सुमति चित्त कहिये चेतनमैं निष्ठावाले हैं: तातें मेरा औ उनका संबंध कैसे होवै? औ जो आप ऐसे कहो संत दयालु स्वभाव हैं तातें तेरी उपेक्षा करैं नहीं. तथापि मोहिन आवैं बूझ कहिये मैं प्रश्न नहीं. कर जाणूं हुं. तातें किस रीतिसें निजहित कहिये अपणा मोक्ष ताका मारग जो ज्ञान, सो कैसे जान्या जावै ॥ २ ॥

(२७) अब प्रश्नसें विना संतोंकी समीपता मात्रसैं पुरुषोंकों बोध होवै है यह वार्ता दो दोहोंकर गुरु कहे हैंः— श्रीगुरुरुवाच.

दोहा—कहत संत जे सहजहीं, बात गीत रुचि बैन ॥ ते तेरे तन दुःख हरन, दायक सब सुख दैन ॥ ३ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! संत जो यथारुचि स्वाभाविक परस्पर बात करे हैंः—"कहोजी भोक्ता कोन है ? चिदाभास हैजी ! काहेतें जी ? कर्ता होणेतें जी" इत्यादि । औ गीत कहियेः—"सही हूं मैं सच्चित आनंदरूप, अपने कर्म करे सब इंद्रे,हों प्रेरक सबका भूप" इत्यादि पदोंकर कदाचित् गायन करे हैं ! औ वेन कहिये शास्त्रोंके वचन कथाके मनमय उच्चारण करे हैं; औ वायक कहिये तत्वमस्यादि महावाक्य शिष्योंप्रति कहे हैं, ते संपूर्ण तेरे हृदेमें होणेवाले जो दुःख तिनके हरणेवाले हैः औ सब सुख कहिये ब्रह्मसुख तत्त्वज्ञानद्वारा ताके देणेवाले हैं ॥ ३ ॥

दोहा—बोलत सहज स्वभाव जे, वचन मनोहर संत ॥ सप्तभूमिका ज्ञानकी; तिनहीमैं दरसंत ॥ ४ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! संत जो मनके हरनेवाले

स्वाभाविक बेन बोले हैं, तिन वचनोंमेंहीं ज्ञानकियां सप्त भूमिका दिखावे हैं । इति अन्वयः ॥ ४ ॥
(२८) शिष्य उवाच.

दोहा—भो भगवन् मैं दूषित अति और नकछु सुहाय ॥ सप्त भूमिका ज्ञान की, कहौ मोहि समुझाय ॥ ५ ॥
(२९) श्रीगुरुरुवाच ॥ सुभ इच्छासुविचारना, तनु मानसा सुहोय ॥ सत्त्वापत्ति असंसक्ति, पदार्थाभाविनि सोय ॥ ६ ॥
तुरिया सप्तम भूमिका, हेशिष यह निर्धार ॥ जो कछु अब संशय करै, वरनौं सोइप्रकार ॥ ७ ॥
(३०) शिष्य उवाच. ॥ भो भगवन् लघु मति सुगम, रहस्य लह्यो नहि जात ॥ भिन्न भिन्न तातैं कहो, ज्ञान भूमिका सात ॥ ८ ॥

टीकाः—रहस्य नाम स्वरूपका है । अन्य स्पष्ट ॥ ८ ॥

(३१) श्रीगुरुरुवाच. ॥ ज्ञानभूमिका वर्णनः—

दोहा—विषयविषै भइ द्वेषता , गुरु तीरथ अनुराग ॥ तातैं सुभ इच्छा कही, कथा श्रवण मन लाग ॥ ९ ॥

टीकाः—विषयोंमैं अनित्यता , सातिशयता । दुःखसाध्यता औ जिनका स्पर्शमात्र आयुपरिणाममैं अति दुःखप्रद है इत्यादि दूषणोंतैं द्वेषता कहिये त्यागकी इच्छापूर्वक गुरुतीर्थमैं प्रीति औ पुराणादिकोंके श्रवणमैं चित्तकी प्रवृत्ति ॥ ९ ॥

दोहा—भगवति रति गति आन मति, प्रेमयुक्त नित चित्त ॥ गुन गावत पुलकित हृदय ॥ दिन दिन सरस सुहित्त ॥ १० ॥

टीका:—तिन पुराणोंके श्रवणतैं भगवत् विषै प्रीति, भगवत् ज्ञानतैं भिन्न और किसीतैं मोक्षका निश्चय ताकी निवृत्ति, भगवत्मैं प्रेमसहित चित्तकी स्थिति, औ परमेश्वर भक्तवत्सल हैं, दयालु हैं, प्रणतपाल हैं, पतितपावन हैं इत्यादि भगवत् गुण गायन कर्तें हुए शरीरमैं पुलकावली औ प्रतिदिन हृदयमैं भगवत् संबंधी अधिक प्रीति, इत्यादि शुभ गुणोंकी जिज्ञासाके संभवतैं प्रथम शुभइच्छा नाम भूमिका कही ॥ १० ॥

(३२) अब अपर सुविचारना नाम भूमिकाका स्वरूप कहे हैं:—

दोहा—दूजी कही विचारना, उपज्यो तत्त्वविचार ॥ एकांत व्है सोधन लग्यो, कोऽहं को संसार ॥ ११ ॥

टीका:—जब तत्वविचार उपज्यो, तत्त्व क्या है, मिथ्या क्या है यह मैं जानूं, तब एकांतमैं स्थित

होइकर विचार करने लागाः—मैं कौन हूं, यह स्थूल देहही मैं हूं, जे स्थूल देहहीं मैं होवों तो याकूं त्याग के परलोकमें कैसे गमन करूं, तातें स्थूलदेह मैं नहीं, औ परलोक में गमन औ या लोकमें आगमन लिंगदेहका होवेहै, जे लिंगदेहही मैं होवों तौ लिंगदेहका सुषुप्ति अवस्थामें कारणमें लय होवे है, औ मैं सुषुप्तिमेंभी रहूंहूं, तातें मैं लिंगदेहभी नहीं औ सुषुप्तिमें कारणदेह रहे है. सो मैं होवों तोमैं अज्ञ हूं या अनुभवतें कारणदेहरूप अज्ञान मेरी दृश्य-प्रतीत होवे है, तातें सोबी मैं नहीं. इस रीतिसैं त्रिते शरीरोंतैं भिन्नभी मैं कर्ता भोक्ता हूं वा अकर्ता हूं? कर्ता सावयव होवे है मेरे अवयव प्रतीत होवैं नहीं, यातें मैं कर्ता नहीं, याहीतें भोक्ता नहीं; सो अकर्ताबी मैं सर्व शरीरोंमें एक हूं वा नानाहूं? वेद जीवब्रह्मका अभेद प्रतिपादन करेहै, जे आत्मा नांना होवैं तो अभेद बने नहीं, यातें सर्व शरीरोंमें एक हूं। सो एकबी मैं ब्रह्मसैं अभिन्न कैसे हूं?

इस वार्ताके, जानणेवास्ते गुरुकी शरणकों प्राप्त होवौं। औ को संसार कहिये कौनसा संसार मेरे तांई दुःखदाई है? ईश्वर रचित, वा जीव रचित; ईश्वर रचित संसार यह है:—"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेय" सो परमेश्वर इच्छा कर्ता भया "मैं एकसैं बहुत प्रजारूप होवौं" या परमेश्वर इच्छातें जगत्की उपादानरूप प्रकृति तमोप्रधान होवै है, तिसतें शब्द-सहित आकाशकी उत्पत्ति होवै है; आकाशतें वायुकी, वायुमें स्वगुण स्पर्श औ शब्द गुण कारणका होवै है। वायुतें अग्नि, अग्निमें आपनारूप गुण औ-शब्द स्पर्श कारणोंके होवै है। अग्नितें जल होवै है औ जलमें आपका रस गुण औ शब्द स्पर्श औ रूप ये तीन कारणोंके गुण होवै हैं। जलतें पृथ्वी औ पृथ्वीमें आपका गंधगुण औ शब्द स्पर्श रूप औरस, ये चार कारणोंके गुण उपजते हैं। इस रीतिसें भूतोंकी उत्पत्तितें पश्चात् पंचभूतोंके मिले सत्त्व अंशतें अंतःकरणकी उत्पत्ति होवै है। सो अंतःकरण,

वृत्तिभेदसैं चार प्रकारका हैः—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकाररूप, तैसैं भूतोंके मिले रजो अंशतें प्राण, अपान, समान, उदान, व्यानरूप, पंचविधप्राण होवै है। हृदय [१] गुदा [२] नाभि [३] कंठ [४] औ सर्व शरीर [५] ये इनके क्रमसैं स्थान होवैं हैं। औ क्षुधापिपासा [१] मलमूत्र अधोनयन [२] भुक्त पीत अन्नजलको पाचन [३] जोग समकरणा [४] स्वास औ रसमेलन [५] ए पंच इनकी क्रमसैं क्रिया होवै हैं। तैसें एक एक भूतके सत्त्व अंशतें पंचज्ञान इंद्रियोंकी उत्पत्ति इस रीतिसैं होवै हैः—आकाशके सत्वरज अंशतें श्रोत्र औ वाक्की उत्पत्ति। वायुके सत्त्व रजो अंशतें त्वक् औ पाणिकी उत्पत्ति। अग्निके सत्त्व रजो-अंशतैं घ्राण औ गुदाकी उत्पत्ति होवै है। इस रीतिसैं सूक्ष्म सृष्टिकी उत्पत्तिसैं अनंतर ईश्वर इच्छासैं भूतोंका पंचीकरण इस रीतिसैं होवै हैः—एक एक भूतके तमोअंशके दो दो भाग भये तिनमैं एक

एक भाग पृथक् जीउकां तियुं रहा, अपर अर्ध भागोंके चार चार भाग किये, सो अपणे अपणे भागकूं छोडके पृथक् रहे, अर्धभागोमैं मिलेतैं पंचीकरण होवैहै। एक एकमैं पंच पंच मिलणेका नाम पंचीकरण है। तिनतैं स्थूल ब्रह्मांडकी उत्पत्ति होवै है। ब्रह्मांडके अंतर चतुर्दश भुवन, तिनमें रहणेवाले देवदैत्य मनुष्यादि शरीर, तथा तिनके यथायोग्य भोग्य होवैहैं। इत्यादि जो ईश्वर सृष्टि सो सुख दुःखकी हेतु नहीं, अपर जो जीव सृष्टि सो सुखदुःखकी हेतुहै। यामैं दृष्टांत, ग्रंथांतरमैं इस रीतिसें लिख्या हैः—जैसें दो पुरुषनके दो पुत्र विदेशमैं गए होवैं, तिनमैं एकका पुत्र मरजावै, एकका जीवता होवै, सो जीता पुत्र बडी विभूतीकूं प्राप्त होयके किसी पुरुषद्वारा अपने पिताकूं अपनी विभूति प्राप्तिकी औ द्वितीयके मरणका समाचार भेजै तहां समाचार सुनावणेवाला दुष्ट होवै, यातैं जीवतैं पुत्रके पिताकूं कहा तेरा पुत्र मरगया औ मरे पुत्रके पिता

कूं कहै तेरा पुत्र शरीरतैं निरोग है, बडी विभूति-
कूं प्राप्त हुवा है, थोडे कालमैं हस्ती आरूढ बडे स-
माजतैं आवैगा । ता वंचक वचनकूं सुनकै जीवते
पुत्रका पिता रोवै है बडे दुःखकूं अनुभव करै है औ
मरे पुत्रका पिता बडे हर्षकूं प्राप्त होवैहै । इस रीति-
सैं देशांतरविषे ईश्वर रचित जीवतेका सुख होवै न-
हीं, तैसैं दूसरेका ईश्वर रचित पुत्र मरगया है ताका
दुःख होवै नहीं, मनोमय जीवैहै ताका सुख होवै है ।
यातैं जीव सृष्टि हीं सुखदुःखकी हेतुहै । ननु ईश्वर
सृष्टिते जीव सृष्टि भिन्न होवै तौ प्रतीत हुइ चा-
हिये औ प्रतीत होवै नहीं. यातैं भिन्न नहीं ? सो
शंका बनै नहीं:—काहेतें जैसें एकहीं ईश्वर रचित
स्त्री शरीरमें पतिकूं भार्या औ भ्राताकों भगिनी
तथा पुत्रकों माता प्रतीत होवैहै, इत्यादि दश पुरु-
षोंकूं भार्या भगिनी आदि शरीर प्रतीत होवैहैं ।
तथा दशोंकोंही पृथक् पृथक् सुख दुःखका साक्षा-
त्काररूप भोग होवैहै । यातैं माता भगिन्यादि रू-

प जीव सृष्टि अवश्य मानी चाहिये, सोई सुखदुःखका हेतु है इस रीतिसैं विचारना। यह दूसरी सुविचारणा नाम भूमिका है ॥ ११ ॥

(३३) अब तृतीय तनुमानसा भूमिकाका स्वरूप कहै हैं:—

दोहा—तनुमानसासु तीसरी, मनको प्रत्याहार ॥ थिर व्है सुद्ध स्वरूपकी, राखै नित संभार ॥ १२ ॥

टीका:— बाह्य अंतर विषयोंतैं चित्तका निरोध करकै नैरंतर्य्य ब्रह्मरूप धेयकी स्मृति सो तीसरी तनुमानसा नाम भूमिका है । मनकी सूक्ष्मता, तनुमानसा शब्दका अर्थ है ॥ १२ ॥

(३४) अब चतुर्थी सत्त्वापत्ति भूमिकाका स्वरूप दिखावै हैं:—

दोहा—चतुर्थी सत्त्वापत्ति यह, अनुभव उदय अभंग ॥ आत्मा जगदरस्यो भलै, ज्यों मध सिंधु तरंग ॥ १३ ॥

टीकाः—पूर्वोक्त रीतिसैं ब्रह्मचिंतन करणेतैं उदय भया जो संशय विपर्यय रहित तत्वसाक्षात्कार, तिसकर आत्मामैं नामरूप आत्मक प्रपंचकी मिथ्यारूपकर प्रतीति होवै हैं। जैसैं समुद्रमैं मिथ्यारूप करके लहरियोंकी प्रतीति होवै है। यह चतुर्थी सत्वापत्तिरूप भूमिका है ॥ १३ ॥

(३५) अब पंचमी असंसक्ति नाम भूमिकाका स्वरूप कहे हैः—

दोहा—छूट्यो तन अभिमान जब, निश्चय कियो स्वरूप ॥ असंसक्ति यह भूमिका, पंचम महा अनूप ॥ १४ ॥

टीकाः—चतुर्थ भूमिकामैं निश्चय किया जो पृथक् अभिन्नरूप ब्रह्म, तिसमैं अभ्यासकी अधिकतासैं मदीयत्व रूपकर जो शरीरका अभिमान ताकी निवृत्ति, अर्थात् पर शरीरवत् शरीरकी प्रतीति; यह उपमासैं रहित पंचमी असंसक्ति नाम भूमिका है ॥ १४ ॥

(३६) अब षष्ठी पदार्थाभाविनी भूमिका दिखावै हैं:—

दोहा—कहै पदारथ बुद्धि लौं, सबको होई अभाव ॥ यह पदारथा भाविनी, षष्ठी भूमि लषाव ॥ १५ ॥

टीका:—दृष्टांत:—जैसें स्वर्णवेत्ता पुरुषकूं कटकादि भूषणोंके विद्यमान होयाबी सर्व स्वर्णरूप हीं प्रतीत होवै है। तैसें देहसें लेकर बुद्धिपर्यंत जो पदार्थ कहे हैं तिन सबोंका अभाव कहिये अधिष्ठान ब्रह्मरूपसें प्रतीति. यह पदार्थोंकी अनुपलब्धिरूप पष्ठी भूमिका कही है ॥ १५ ॥

(३७) अब तुरीया नामक सप्तमी भूमिका दिखावै हैं:—

दोहा—भावा भाव न तहां कछु, सप्तम तुरिया मांहि ॥ मैं तूं तहां न संभवै, कहा अहै कह नाहिं ॥ १६ ॥

टीकाः—सप्तम तुरीया नाम भूमिकामैं मैं शब्दका अर्थ प्रमाता, तूं शब्दका अर्थ प्रमेय: इन दोनोंके बनणेतैं अर्थसैं सिद्ध हुवा जो प्रमाण या त्रिपुटीरूप द्वैतकी जैसे चतुर्थी पंचमी भूमिकामैं भावरूपकर प्रतीति होवैः तैसें नहीं होवै है। अभाव रूपकर जैसे षष्ठी भूमिकामैं प्रतीति होवै. तैसैंबी होवै नहीं। जो कहो भावाभाव पदार्थतैं भिन्न शेष रही वस्तु क्या है? तहां सुनोः—वाणीका अविषय होनेतैं अवाच्य है। यामैं श्रुति प्रमाण हैः—"यतो वाचो निवर्तंते अप्राप्य मनसा सह" मनसहित वाणियां न प्राप्त होइकै जातैं निवृत्त होवैहैं" "यन्मनसा न मनुते" "जिसकों मनकरके लोक नहीं जाणते" ॥ १६ ॥

(३८) अब ग्रंथ अभ्यासका फल कहे हैंः—

सोरठा—प्रगट करी गुरुदेव, सप्तभूमिका ज्ञानकी ॥ अनाथ लहै निज भे-

व, चितदै करत विचार जो ॥ १७ ॥

टीकाः—अनाथदासजी कहे हैंः—गुरुनें प्रगट करी जो ज्ञानकी सप्तभूमिका, चित्तकों एकाग्रकर जो तिनकों विचारे, सो आपने वास्तव स्वरूपकों जाण लेवै ॥ १७ ॥

दोहा—तृतीयो माल विचारको, हरन सकल संताप ॥ ज्ञानभूमिका प्रगट कर, भयो सांत अब आप ॥ १८ ॥

इति श्रीविचारमालायां सप्त ज्ञानभूमिकावर्णनं नाम तृतीयविश्रामः समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ ज्ञानसाधनवर्णनं नाम

चतुर्थविश्रामप्रारंभः ॥ ४ ॥

(३९) पूर्व विश्राममें ज्ञानकी सप्त भूमिका कही, अब ज्ञानके साधन जानवेकी इच्छावाला हुवा शिष्य कहे हैंः—शिष्य उवाच ॥

दोहा—भगवन् मै जान्यो भले, सप्त-

भूमिका ज्ञान ॥ निर्मल ज्ञान उद्योतकूं, साधन कौन प्रमान ॥ १ ॥

टीकाः—हे भगवन्! ज्ञानकी सप्त भूमिका में भली प्रकार जानी है. अब समष्टि व्यष्टि उपाधि-रूप मलसैं रहित शुद्धब्रह्मका जो ज्ञान, ताकी उत्पत्तिके साधन कौन हैं ? यह कहो । याका भाव यह हैः—जिन साधनोंतें ज्ञानमैं अधिकार होवै सो प्रमातामें होणेवाले साधन कहो? औ प्रमाण कहिये प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणमैं किस प्रमाणजनित तत्त्वज्ञान कहा है ? यह कहो ॥ १ ॥

अब शिष्य. अपनी उक्तिमैं हेतु कथनार्थ प्रथम दृष्टांत कहे हैः—

दोहा—भगवन् तिमिर नसै नहीं, कहि दीपककी बात ॥ पूरन ज्ञान उदयबिना, हृदे भरम नहीं जात ॥ २ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! जैसैं अंधकारमैं स्थित

पुरुषका दीप तैल बत्ती जोतिकीया बातों कीये-
सैं अंधकार दूर नहीं होवै है, तद्वत् ब्रह्मज्ञानके
उदयबिना हृदयमैं स्थित जो अनात्मामैं आत्म-
प्रतीतिरूप भ्रम सो दूर नहीं होवै हैं; यातैं आप
ज्ञानके साधन कहो ॥ २ ॥

(४०) इस रीतिसैं शिष्यकर पूछे हुए श्रीगुरु
ज्ञानके साधन कहे हैं:— श्रीगुरुरुवाच ॥ ज्ञान
साधन कहत हैं:—

**दोहा—प्रथमैं जक्तासक्ति तजि, दारा
सुत गृह वित्त ॥ विषवत् विषय विसा-
रि जग, राग द्वेष अतित्त ॥ ३ ॥**

टीका:—हे शिष्य! प्रथम विषय संपादनका
साधनरूप जो जगत् तामैं आसक्तिका त्यागक-
र, काहेतैं संसारासक्ति ज्ञानकी विरोधी है। यह
पंचदशीमैं कहाहैः— ॥ श्लोक ॥ " संसारास-
क्तचित्तः संश्चिदाभासः कदाचन ॥ स्वयंप्रकाश-

कूटस्थं स्वतत्त्वं नैव वेत्त्ययम् (१)" "यह चिदाभासरूप जीव विषयसंपादनादि ध्यानरूप जगत्मैं आसक्तचित्त हुवा, कदापि स्वते प्रकाश कूटस्थ स्वस्वरूपकूं नहीं जानैहै" । औ धन, दारा, सुत, गृह इनमेंबी आसक्तिका परित्याग कर । जातैं ज्ञानके अधिकारीमैं आसक्तिका अभाव गीतामैं कहा है:— "असक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु" । "पुत्र दारा गृहआदिकोंमैं प्रीतिका अभाव" औ शब्दादि विषयोंकूं विषकी न्यांइ भूलाए. काहेतैं विषयासक्ति बी ज्ञानमें प्रतिबंध है । सो अष्टावक्रमें कहा है:— "मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज" औ रागद्वेषका सर्वथा परित्याग कर, काहेतैं भगवाननें कहा है:— "इंद्रियोंके शब्दादि विषयोंमैं राग द्वेष स्थित हैं, मुमुक्षु तिनके वश न होवै, काहेतैं सो इसके परिपंथी हैं" ॥ ३ ॥ (४१) पूर्व कहा, जो जगतादि पदार्थोंमैं आसक्तिका त्याग, ताकी सि-

द्धि अर्थ प्रत्येक पदार्थमैं दूषण दिखावणेकी इ-च्छावाले हुये, प्रथम स्त्रीमैं दूषण दिखावै हैं:--

दोहा-तिय अतिप्रिय जे जानि नर, करत प्रीति अधिकाय ॥ ते सठ अति मति मंद जग, वृथा धरी नरकाय ॥ ४ ॥

टीका:-जे नर स्त्रीकूं अति प्यारी जानकर तामैं अति प्रीत करै हैं, ते पुरुष छठ हैं औ अति मंदबुद्धिहैं: काहेतैं मोक्षका साधन मनुष्यशरीर तिनोनैं व्यर्थ खोयाहै ॥ ४ ॥

दोहा:-अस्थि मांस अरु रुधिर त्वक्, कस्मलनषसिष पूर ॥ निरधन असुचि मलीन तन, त्याग आग ज्यूं दूर ॥ ५ ॥

टीका:-हे शिष्य ! स्त्रीशरीर हाडमांस अरु रक्त त्रमडी इन अशुद्ध पदार्थोंकर नखसैं लेकर

शिखापर्यंत पूरन है औ जातिकर भी नीच भग-
वानने कही है औ ऊपरसैं शरीरकर अपवित्र औ
मलीन है औ यह स्त्री शरीरकरहीं दुष्ट नहीं किंतु
स्वभावसैंबी दुष्ट है। सोबी कहाहैः— ॥ चोपाई ॥
"नारिस्वभाव सत्य कवि कहहीं, अवगुन आठ स-
दा उर रहहीं॥ साहस अनृत चपलता माया, भय
अविवेक अशौच अदया॥" "कोटि वज्र मंघात
जुकरिये, सबकों सारखीच इक धरिये॥ तियके हि-
य मम सो न कठोरा, रिषि मुनिगन यह देत ढंढो-
रा॥" यातैं अग्निकी न्यांई दाहका हेतु जानकर
ताका त्याग कर ॥ ५ ॥

ननु जैसें सर्प विछु आदिक स्पर्शसैं अनर्थकर
होवैहैं, तैसैं स्त्रीभी स्पर्शद्वारा अनर्थका हेतु है; चिंत
नध्यानादिकों कर नहीं? यह आशंकाकर कहै हैंः—

**दोहा—अहिविष तन काटै चढै, यह
चिंतवत चढि जाय॥ ज्ञान ध्यान पुनि-
प्रान हूं, लेत मूल युत षाय ॥ ६ ॥**

टीकाः—यद्यपि सर्पका विष, स्पर्श कियेसैं चढेहै तथापि यह कामरूप विष, स्त्रिके चिंतनमात्रसैं शरीरमैं प्रवेश करैहै; यातैं चिंतनकूं भी मैथुन कहा है औ स्पर्श कियेसैं तौ शास्त्रज्ञानकूं दूर करै है। सोई कहाहै—"जब पंडित पढि तियपैं ढिसरे, उक्ति युक्ति सबही तब विसरे" ॥ किंवा चित्तकी एकाग्रता अर्थ जो ध्येयाकार वृत्तिरूप ध्यान आश्वास इनकूं विचार सहित दूर करैहै। मैथुन कीयेसैं श्वास अधिक टूटै है इहीं प्राणक्षाणा है॥ ६ ॥

(४२) या स्त्री चिंतनकूं मैथुनरूप कहीं कहा है? या आकांक्षके होयां कहै हैः—

दोहा—मैथुन अष्ट प्रकार जो, अनाथ कह्यो श्रुति चाहि॥ इनतैं निजविपरीत जो, ब्रह्मचर्य कहि ताहि ॥ ७ ॥

टीकाः—वक्ष्यमाण दोहेमैं कहणा जो है अष्ट-

प्रकारका मैथुन सो श्रुतिमैं देखकर कहा है । इस अष्ट प्रकारके मैथुनसैं जो विपर्यय है स्त्रीके श्रवण स्मरणादिका त्यागरूप, सो ब्रह्मचर्य कहिये है ॥७॥

सो अष्ट प्रकारका मैथुन कोनसा है? तहां सुनोः—

दोहा—सरवन सिमरन कीरतन, चिंतवन बात इकंत ॥ दृढ संकल्प प्रयत्न तन, प्रापति अष्ट कहंत ॥ ८ ॥

टीकाः—स्त्रीके सौंदर्यादि गुणोंका श्रवण औ कदाचित् अनुभव कीयेका स्मरण औ हर्षपूर्वक तिनका कथन औ तिनका चिंतन औ एकांत स्थलमैं स्त्रीसैं संभाषण औ ताकी प्राप्तिका दृढ संकल्प, पुनः ताकी प्राप्तिअर्थ प्रयत्न औ तासं संभोग; यह अष्ट प्रकारका मैथुन कहा है॥ ८ ॥

(४३) इस रीतिसैं स्त्रीमैं दूषण कहकर, अब पुत्रमैं दूषण दिखावै हैंः—

दोहा—सुत मीठी बाता कहै, मनहु मोहिनीमंत ॥ सुनि सुनि आनंद पावहि, वस होत मूढ जग जंत ॥ ९ ॥

टीकाः—पुत्र जो मधुर तोतले वचन कहे है,सो मानो चित्तके मोहित करणेवाले मोहिनी मंत्र हैं! तिनोंकूं पुनः पुनः श्रवण करके जे आनंदमग्न होयके ताके वश होवै हैं ते पुरुष मूढ हैं। सोई कहाहैः— ॥ दोहा ॥ "करविचार यों देखिये पुत्र सदा दुष रूप ॥ सुख चाहत जे पूततैं ते मूढनके भूप" ॥ ९ ॥

पुत्रमैं आसक्त पुरुषकों मूढ कहा तामैं हेतु कह्या चाहिये ? ऐसैं कहो, तहां सुनोः—

दोहा—काज अकाज लह्यो नहीं, गह्यो मोह दृढ बंध ॥ सुगुरु खोज मग ना चह्यो, वह्यो सिंधु मति अंध ॥ १० ॥

टीकाः—जातैं पुत्रमैं आसक्तिरूप दृढ बंधन कर.बंधायमान कोईके जा पुरुषनैं सुष्ठु गुरुका अ-

न्वेषण (खोज) करके, मेरे तांई मनुष्य शरीर पाइं
के क्या कर्तव्य है ऐसें नहीं जान्या औ मोक्षके
मार्ग तत्त्वज्ञानकूं संपादन नहीं किया औ विवेकसैं
रहित होकर जन्ममरणरूप संसारसमुद्रमें निमग्न
हुवा है; तातें सो पुरुष मूढ है। सोई कहा है:-
" निद्रा भोजन भोग भय, ए पशु पुरुष समान॥ न-
रन ज्ञान निज अधिकता, ज्ञानविनापशुजान"१०
(४४) इस रीतिसैं पुत्रमें दूषण दिखाइके गृहमें
दूषण दिखावे हैं:-

सोरठा-अंधकूप सम गेह, पर्यो
न जान्यो मरमसठ ॥ बंध्यो पशुवत
नेह, सुत त्रिय क्रीडामृग भयो ॥ ११ ॥

टीका:-जलसैं रहित वनके कूपकी न्यांई
दुःखदाई जो गृह, ताके भरणमें प्रयत्नमान् हुआ
औ गृहमें स्थित जो सुतदारादि तिनमें स्नेहरूप
रज्जुकर बंधायमान हुवा, तिनकी क्रीडाका मा-

नो मृग भया है ! औ जैसे कोई पुरुष अपणे आल्हादके अर्थ गृहमैं प्रीति करै हैं तैसैं ये सुत दारा आदि आपने सुख अर्थ मेरेमैं प्रीति करेहैं या मर्मकूं नहीं जाने हैं; यातें शठ है ॥ ११ ॥

(४५) अब द्रव्यमैं दूषण दिखावै हैं:–

दोहा–द्रव्यदुषद तिहुं भांति यह, संपति मानत क्रूर ॥ विसऱ्यौ आत्म-ज्ञान धन, सब सुख संपति मूर ॥ १२ ॥

टीका:--सुत, दारा, गृह इन तीनोंकी न्याई दुःखदाई जो धन ताकूं जो संपत्ति मानै है, सो पुरुष क्रूर कहिये झूठा है: काहेतैं जा धनके संपादन कर आपणे आत्माका ब्रह्मरूपतासैं जो ज्ञानरूप धन सो विस्मरण भया है। सो ज्ञान कैसा है ? सब सुख कहिये ब्रह्मसुख ताकी संपत्ति कहिये प्राप्तिका हेतु है ॥ १२ ॥

धन दुःखका हेतु किस प्रकारसैं है ? ऐसैं कहो तहां सुनोः–

दोहा—बहु उद्यम प्रानी करै, अति क्लेशता हेतु ॥ जुरे तु रच्छा निपट दुख, जाइ तु प्रान समेत ॥ १२ ॥

टीकाः—धनकी प्राप्ति अर्थ जो पुरुष कृषि-वाणिज्यादि बहुत उपाय करै हैं, तिनकर तिनकूं अति क्लेश होवै है यातैं संग्रहकालमैं दुःखदाई है । औ किसी पुण्यवशतैं इकत्र हो जावै तौ नृप चोर अग्न्यादिकोंतैं रक्षा करणेमैं अति क्लेश होवै है औ नृप चोर अग्न्यादि निमित्ततैं दूर हो जावै तौ प्राण वियोगके समान दुःख होवै है; जातैं धन, पुरुषका बाह्य प्राण है । सोई पंचदशी-मैं कहा हैः— "अर्थोंके एकत्र करणेमैं क्लेश है, तैं-से रक्षा करणेमैं औ नाशमैं औ खरचणेमैं क्लेशहैः ऐसैं क्लेश करणेवाले धनोंकूं धिकार है" ॥ १२ ॥

(४६). पूर्व एकादश दोहोंकर कहे अर्थकूं दृष्टांत सहित एक दोहेकर कहै हैंः—

दोहा—तातैं इनको संग तूं, छाड कुसल जियमान ॥ मानो विषतैं सर्पतैं, ठगतैं छूट्यो निदान ॥ १४ ॥

टीकाः—जातैं सुत, दारा, गृह, धन, उक्त रीतिसैं दुःखदाई हैं; तातैं तूं इनके संबंधकूं त्याग करि आपणा कल्याण निश्चय कर। यद्यपि कल्याण नाम सुखका है सो इष्टकी प्राप्तिसैं होवै हैं; तथापि अनिष्टकी निवृत्तितैंभी होवै है। यामैं दृष्टांत कहे हैंः— जैसैं कोउ बालक विष सर्प ठगके वश हुवा किसी पुण्यवशतैं छूटकै आपको सुखी मानैं तद्वत् ॥ १४ ॥

(४७) पूर्व तृतीये दोहेके प्रथम पादमैं "जगतमैं आसक्तिका त्याग कर" यह कहा तामैं हेतु कहे हैंः—

दोहा—जगत् खेदमैं परै जिन, केवल दुषता माहि ॥ सत्य सत्य पुन सत् कहुं, सुख स्वप्नेहुं नाहिं ॥ १५ ॥

टीकाः—हे शिष्य! पूर्व उक्त जगत्का परित्याग कर, तामैं आसक्ति मत कर; काहेतैं तामैं केवल क्लेशहीं है। इस अर्थकूं प्रतिज्ञाकर कहे हैं, सत्य इत्यादि पदोंकर॥ १५ ॥

(४८) अब श्रोताकी बुद्धिमैं अर्थके आरूढ होणे अर्थ, जगत्कों समुद्रके रूपालंकारसैं कहेहैंः—

दोहा—जग समुद्र आसक्ति जल, कामादिक जलजंत ॥ भवर भरम तामैं फिरैं, दुष सुख लहर अनंत ॥ १६ ॥

चिंता वडवा अग्नि जहँ, तृष्णा प्रबल समीर॥ जिहिं जहाज यामैं पऱ्यौ, तिहिं किम धीर समीर ॥ १७॥

टीकाः—जिस पुरुषका चित्तरूपी जहाज या जगतरूप समुद्रमैं पड्या है ताके अंतःकरणमैं धैर्यादि दैवीसंपदके गुण कैसैं उदय होवैं। अन्य स्पष्ट ॥ १७ ॥

(४९) पूर्वोक्त जगत्मैं आसक्ति किस हेतुतैं होवै है? या आकांक्षाके होयां, शरीरमैं आत्म अभिमानतैं होवै है; यह वार्ता सदृष्टांत दो दोहों कर कहे हैं:-

दोहा-अपनो चित दुसरा भयो, पर अवगुन दर संत ॥ दृष्टि दोषतैं प्रगट ज्यौं, बिव ससि गगन लहंत ॥ १८ ॥

टीका:-जैसैं अपनैं चित्तमैं दुराशतारूप दोषकर अन्य पुरुष निष्ठ दूषन प्रतीत होवै हैं औ नेत्रोंमैं तिमिरादि दोषकर आकाशमैं दो चंद्र प्र-सिद्ध प्रतीत होवै हैं ॥ १८ ॥

इस रीतिसैं दृष्टांतकर कहे अर्थकूं दार्ष्टांतमैं जोडे हैं:-

दोहा-तातैं तन अभिमान तजि, अ-जर पासि बड आहि ॥ ज्ञान लोप सं-सारकर, भूल न गहिये ताहि ॥ १९ ॥

टीका:—उक्त दृष्टांतोंकी न्याई शरीरमें आत्म अभिमानकर जगत्में आसक्ति होवै है, तातें ता अभिमानका परित्याग कर। यद्यपि चिरकालकी होणेतें अभिमानरूप पासी अजर है तथापि ज्ञानकर ताका बाध निश्चयरूप लोप होवै है, तातें सो तूं कर। इस रीतिसें लोप किये पुनः संसारमें भूलकरभी आसक्ति होवै नहीं ॥ १९ ॥

(५०) विषवत् विषय विसार यह पूर्व कह्या, तामें हेतु कहे हैं:—

दोहा—सुख ब्रह्मा इंद्रादिके, स्वान विष्ठवत् त्याग ॥ नाममात्र सुख अवनिके, भूल न इन अनुराग ॥ २० ॥

टीका:—ब्रह्मा औ इंद्रादि देवनके जो शब्दादि विषय हैं, सो कूकरके विष्ठावत् नीरस हैं; तिनमें सुख नहीं, तातें तिनका परित्याग कर। औ पृथ्वीके शब्दादि विषयोंमें सुख संज्ञामात्र है। जैसें कि-

सी जन्मांध पुरुषका कमलनयन नाम कल्पै, सा निरर्थक कथन मात्र है। तातैं हे शिष्य ! इन-पृथ्वी-के शब्दादि विषयोंमैं भूलकरभी प्रीति मतकर । ननु विषयोंमैं सुख नहीं, यह तुमारी कपोलकल्पना है ? सो शंका बनै नहींः—काहेतैं युक्ति प्रमाणकर या अर्थकी सिद्धि होवै है। जे कहो युक्ति प्रमाण कोण है ? तहां सुनोः—जो विषयमैं आनंद होवै तो, एक विषयसैं तृप्त जो पुरुष ताकूं जब दूसरे विषयकी इच्छा होवै तब बी प्रथम विषयसैं आनंद हुवा चाहिये औ होवै नहीं है; यातैं विषयमैं आनंद नहीं। किंवाः—जो विषयमैं हीं आनंद होवै तो, जा पुरुषका प्रियपुत्र अथवा और कोई अत्यंत प्यारा जो अकस्मात् बहुतकाल पीछे मिल जावै तब वाकूं देखतेही प्रथम जो आनंद होवै सो आनंद फेर नहीं होता, सो सदाहि हुवा चाहिये; काहेतैं आनंदका हेतु जो पुरुष है सो वाके समीप है; यातैं पदार्थमैं आनंद नहीं। किंवाः—जो

विषयमैं आनंद होवै तौ,समाधिकालविषै जो यो-
गानंदका भान होवै सो न हुवा चाहिये;काहेतें स-
माधिमैं किसी विषयका संबंध नहीं है,यातें विषय-
मैं आनंद नहीं। इत्यादि युक्ति है। औ वेदमैं यह
लिखा हैः—"आत्मस्वरूप आनंदकूं लेकै सारे आ-
नंदवाले होवै हैं." ननु विषयोंमैं आनंद नहीं है तो
भान क्यूं होवै है? तहां सुनोः— विषय उपहित
चेतन स्वरूप आनंदकी पुरुषकूं विषयमैं प्रतीत होवै
है। ननु विना होइ वस्तुकी प्रतीति होवै नहीं औ
चेतनस्वरूप नित्य आनंदकी विषयमैं अनिर्वचनी-
य उत्पत्ति होवै, यह कहना बनै नहीं औ अन्यदे-
शमैं स्थित विषयकी अन्यदेशमैं प्रतीति वा अन्य-
वस्तुकी अन्यरूपतैं प्रतीतिरूप अन्यथा ख्यातिका
अंगीकार नहीं; यातैं विषय उपहित चेतनस्वरूप
सुखकी विषयमैं प्रतीति होवै है, यह कहना बनै
नहीं? सो शंकाबी बनै नहींः—काहेतें यद्यपि अ-
न्यथाख्यातिका सिद्धांतमैं अंगीकार नहीं, तथा-

पि अधिष्ठान औ आरोप्य जहां एकवृत्तिके विषय होवैं, तहां अन्यथाख्याति हीं मानी हैं । तथाहिः—जैसे रक्तपुष्पसंबंधी स्फटिकरूप अधिष्ठान औ लालीरूप अध्यस्त दोनो एक वृत्तिके बिषय हैं, तहां स्फटिकमैं रक्तताकी प्रतीति अन्यथाख्यातिसैं होवै है ! तैसैं इहां सिद्धांतमैं अन्यथाख्यातिहीं अंगीकार करी है । औ अन्यथाख्यातिमैं सर्वथा विद्वेष होवै तौ, विषय उपहित आनंदका विषयमैं अनिर्वचनीय संबंध उपजे है। विषय उपहित आनंदका स्वरूपसंबंध चेतनमैं है, ताकी विषयमैं अनिर्वचनीय उत्पत्ति होवै है; यातैं इहां अनिर्वचनीय ख्यातिहीं है।अरु जो कहे, विषयाकार वृत्तिसैं विषयउपहित चेतन स्वरूपानंदका लाभ होवै तो, मार्गमैं वृक्षाकार वृत्तिसैं तथा सर्वज्ञेयाकार वृत्तिसैं ज्ञेय उपहित चेतनस्वरूपानंदका लाभ हुवा चाहिये ? सो बनै नहींः—काहेतैं अभिलषित विषयाकारवृत्तिसैं विषयउपहित चेतन

स्वरूपानंदका भान होवे है, अन्यका नहीं ॥ २० ॥
(५१) ननु विषयोंमैं सुख नहीं तौ, पुरुषोंकी प्रवृत्ति किंउ होवै है ? या शंकाके होयां, विचारविना होवैं है औ प्रवृत्तिसैं प्रत्युत क्लेशहीं होवै है, यह अर्थ सदृष्टांत तीन दोहोंकर दिखावे हैं:—

दोहा:—धायो चात्रिक धूमलहि, स्वांत बूंदकों मानि ॥ मूरख पऱ्यो विचार बिन, भई दृगनकी हानि ॥ २१ ॥

टीका:—जैसे कोउ चातक पक्षी, दूरसैं धूमकूं देखकर तामैं मेघबुद्धिसैं स्वांत बूंदका निश्चय करके, सो मूर्ख पक्षी विचारसैं विना ता धूममैं प्रवेश करे तो बूंदका अलाभ औ नेत्रोंकी हानि होवैं है ॥ २१ ॥

अन्य दृष्टांत:—

दोहा:—नारि पराई स्वप्नमैं, भुगती

अति सुख पाय ॥ धर्म गयो कंद्रप गयो, असुचि भयो रु खसाय ॥ २२ ॥

टीकाः—जैसैं किसी विचारशून्य पुरुषनैं परस्त्री वा स्वपरस्त्री अतिसुख मानके भोगी, तातैं संतानका अलाभ औ धर्मकी हानी होवै है। कंद्रप गयो कहिये वीर्यकी हानी अरु खसाय कहिये वीर्यपाततैं, अशुचि होवै है ॥ २२ ॥

अन्य दृष्टांत कहे हैंः—

दोहा—चोग देषि ज्यूं परत खग, आप बंधावत जार ॥ ऐसें सुखसो जानि जग, वस भये हीन विचार ॥ २३ ॥

टीकाः—जैसैं विचारशून्य पक्षी, जलवाले स्थानमैं चोगकूं देखके तृप्तिके अर्थ प्रवृत्त होवैं; तहां तृप्तिका अलाभ होवै है औ प्रत्युत अपणे आपकों जालमैं बंधायमान करै है। इस रीतिसैं दृष्टांत कहकर, अब दार्ष्टांत कहे हैंः—सो पूर्वोक्त

विषय, सुखरहित है; विचारशून्य पुरुष तिनके वश होयकै केवल दुःखहीकूं अनुभव करे हैं ॥ २३ ॥

(५२) अब तिन विचारशून्य विषयी पुरुषोंकी निर्लज्जताकूं, स्वान दृष्टांतसैं प्रगट करे हैं:—

दोहा—स्वान स्वातियको संगकरि, रहत घरी उरझाय ॥ जग प्रानी ताकों हसैं, अपनो जन्म विहाय ॥ २४ ॥

टीका:—कूकर जो अपने पशु स्वभावसैं स्वकूकरीसैं ग्राम्य धर्म करिके एक घटिकाभर फस रहे है, ताकूं जो विचारशून्य जगतके जीव हसै हैं, सो तिनकी निर्लज्जता है; काहेतें ऐसैं विचार नहीं करे हैं, जो यह स्वान षट्मास पश्चात् एकवार संभोग करणेतें क्लेशकूं अनुभव करैहै, हमारा तो इस कर्ममैं जन्म व्यतीत होवे है, हमकूं परिणाममैं केता क्लेश होवैगा ॥ २४ ॥

(५३) औ जे कहो, पूर्वोक्त विषयोंके त्यागमैं कौन प्रमान है ? तहां सुनो:—यद्यपि श्रुति-

स्मृतिरूप प्रमान बहुत हैं तथापि ज्ञानी अज्ञानीके बैरागके भेद दिखावणे अर्थ महात्माका आचाररूप प्रमाण कहे हैं:–

दोहा–अनाथ बिचारे विषयरस, संतन जान मलीन ॥ ता उच्छिष्टसों रति करैं, कामी काक अधीन ॥ २५ ॥

टीका:–स्वामी अनाथजी कहे हैं:–संतोनें विषयोंकूं अविद्याके कार्य औ अनित्यता आदि दूषणोंसहित जानकर त्यागे हैं औ जे पुरुष प्रथम भुक्त औ त्यक्त पदार्थोंसें प्रीति करे हैं औ कामी हुये तिनके आधीन होवै हैं, सो पुरुष काक कहिये कौवा जैसें पक्षियोमैं नीच हैं तैसे अधम हैं भाव यह है:– अज्ञानीकूं जो वैराग होवै है सो विषयोंमें दोषदृष्टिसैं होवै है, सो कालांतरमैं पुनः विषयोंमैं सम्यक् बुद्धिसैं दूर होवैहै। जैसें मैथुनके अंतमैं सर्व पुरुषोंकूं स्त्रीमैं ग्लानि होवै है औ कालांतरमैं शोभन बुद्धि होवै है; यातें अज्ञानीका वैराग्य

मंद है औ ज्ञानवानकूं जा वैराग्य होवै है सो विषयोंमें दोषदृष्टि औ मिथ्यात्व निश्चयपूर्वक होवै है; यातें त्यक्त विषयोंकूं पुनः ग्रहण करै नहीं। जैसें अपणें वमनकूं फेर पुरुष ग्रहण नहीं करता तैसें। यातें ज्ञानीका वैराग्य दृढ है ॥ २५ ॥

(५४) इस रीतिसें दोषदृष्टिरूप वैराग्यका हेतु औ त्यागरूप वैराग्यका स्वरूप कहा, अब वैरागका फल कहे हैं:-

दोहाः-जगडंबरसों जग जहां, उपजै निंज निरवेद ॥ पाक काचरा सर्प ज्यों, छुटे सहज जग षेद ॥ २६ ॥

टीकाः-जहांपर्यंत यह जगत्‌रूप अडंबर है, अर्थ यह जो प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय या जगत्‌में औ शब्दादि प्रमाणजन्य ज्ञानके विषय स्वर्गादि जगत्‌में, जब पुरुषकों वैराग्य उत्पन्न होवै, तब अनायासतैंही ज्ञानद्वारा जन्ममरणरूप खे-

दकी निवृत्ति होवै है। जैसैं पकी त्वचाकूं अनायासतैं सर्प त्यागै है तैसैं ॥ २६ ॥

(५५). ज्ञानके अधिकारीमैं एक वैराग्यहीं नहीं होवै है, किंतु अपर साधनही होवै हैं, यह कहेहैंः—

दोहाः—पाप छीन तप दान बल, हृदे सांत गतराग ॥ विषय वासना त्याग करि, भ्यो मुमुछु बडभाग ॥ २७ ॥

टीकाः—जा पुरुषने दान बल कहिये ईश्वरार्थ शुभ कर्मोंकर पाप निवृत्त कीये हैं, अर्थात् जो शुद्ध हृदय है औ उपासनारूप तपके बलकर शांत हृद कहिये एकाग्र चित्त है औ गतराग कहिये वैरागसंयुक्त है औ विषयोंकी वासना त्यागकर अर्थात् षट् संपत्तिसंयुक्त होकर जो बडे भागवाला अविद्या तत्कार्यरूपबंधकी निवृत्ति औ परमानंदकी प्राप्तिरूप मोक्षकी इच्छावाला हैं। इहां विवेकका अध्याहार करणा। इस रीतिसे शुद्धहृ-

दय औ एकाग्र चित्त औ साधन चतुष्टय संपन्न जो पुरुष सो तत्त्वज्ञानका अधिकारी है ॥ २७ ॥

(५६) अब ज्ञानके अधिकारीकूं कर्तव्य कहे हैं:—

दोहा—सो अधिकारी ज्ञानको, श्रवण ज्ञानमय ग्रंथ ॥ सो तबलग जबलग भलै, समझै पंथ अपंथ ॥ २८ ॥

टीका:—सो अधिकारी पुरुष षट्लिंगोंसैं वेदांत वाक्यनका तात्पर्य निश्चयरूप श्रवण करै। सो षट्लिंग यह हैं:—उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता [१] अभ्यास [२] अपूर्वता [३] फल [४] अर्थवाद [५] उपपत्ति [६] अब इनके अर्थ सुनोः—जो अर्थ आरंभमैं होवै सोई समाप्तिमैं होवै, तहां उपक्रम उपसंहारकी एकरूपता कहिये है। जैसैं छांदोग्यके षष्ठाध्यायके उपक्रम कहिये आरंभमैं अद्वितीय ब्रह्म है औ उपसंहार कहिये समाप्तिमैं अद्वितीय ब्रह्म है [१] पुनः पुनः कथनका

नाम अभ्यास है। छांदोग्यके षष्ठ अध्यायमैं नव-वार तत्त्वमसि वाक्य है; यातैं अद्वितीय ब्रह्ममैं अ-भ्यास है [२] प्रमाणांतरतैं अज्ञातताकूं अपूर्वता कहे हैं। उपनिषद्रूप शब्द प्रमाणतैं और प्रमा-णका अद्वितीय ब्रह्म विषय नहीं, यातैं अद्वितीय ब्रह्ममैं अज्ञाततारूप अपूर्वता है [३] अद्वितीय ब्रह्मके ज्ञानतैं मूलसहित शोक मोहकी निवृत्तिरूप फल कह्या है [४] स्तुति अथवा निंदाका बो-धक वचन अर्थवाद वाक्य कहिये है। अद्वितीय ब्रह्मबोधकी स्तुति, उपनिषदमैं स्पष्ट है [५] कथ-न करे अर्थके अनुकूल युक्तिकूं उपपत्ति कहे हैं। छांदोग्यमैं सकल पदार्थनका ब्रह्मसैं अभेद कथनके अर्थकार्यका कारणतैं अभेद प्रतिपादन, अनेक दृष्टांतोंसैं कह्या है (६)। इस रीतिसैं षट्लिंगनतैं सकल वेदांतनका तात्पर्य जानिये है। सो श्रवण, ज्ञानमय ग्रंथ जो उपनिषद् ग्रंथ हैं तिनसैं सिद्ध होवे है। तातैं तिनकूं श्रवण करे। सो तिनकूं तव-

लग श्रवण करे, जबलग श्रवणका फल प्रमाणगत संशयकी निवृत्ति होवै । सो फल यह हैः—पंथ कहिये वेदांतवाक्य अद्धितीय ब्रह्मके प्रतिपादक हैं अपंथ कहिये अन्य स्वर्गादि अर्थके प्रतिपादक नहीं; इस रीतिसैं समझे कहिये निश्चय करै ॥२८॥

जे कहो, अद्धितीय ब्रह्ममैं वेदांतवाक्योंके तात्पर्यका निश्चय षट्‌लिंगोंतैं होवै है, परंतु ब्रह्मात्माका अभेद निश्चय काहेतैं होवै है ? तहां सुनोः—

दोहाः—तत्त्वमसि अहंब्रह्मास्मि, इत्यादिक महा वाक्य ॥ गुरुमुख श्रवण करे भले, सारासार हताक ॥ २९ ॥

टीकाः—गुरुमुखात् तत्त्वमसि महावाक्यके अर्थ श्रवण करणेतैं "अहंब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं यह ज्ञान होवै है । सो या रीतिसैं होवै हैः— तत्त्वमसि यां वाक्यमैं तत् त्वं असि ये तीन पद हैं, तिनमैं प्रथम पदका वाच्य कहे हैंः— माया उपहित

जगत्का कारण, सर्वज्ञतादि धर्मवान्, परोक्षताविशिष्ट, सत्य ज्ञान अनंत स्वरूप जो ईश्वर, चेतन, सो तत्पदका वाच्य है। अब त्वंपदका वाच्य कहे हैंः—जो अंतःकरणविशिष्ट, अहं शब्द औ अहंवृत्तिकी विषयताकर प्रतीत होवे है, सो जीव चेतन त्वंपदका वाच्य है औ असिपद दोनोंकी एकताका बोधक है। अब वाक्यार्थ कहे हैंः—जो सर्वज्ञतादि गुणवान् परोक्ष ईश्वर चेतन, सो अंतःकरणविशिष्ट अल्पज्ञता आदि धर्मवान् नित्य अपरोक्ष तूं है यह कहना विरुद्ध है बनै नहीं; काहेतें विरुद्ध अर्थमें वक्ताका तात्पर्य होवै नहीं, यातें सार असार हताक कहिये ईश्वर जो जीव ईश्वरका स्वरूपतामें सार जो चेतनभाग ताकूं एक जान। महावाक्योंमें लक्षणा अंगीकार करी है, यातें लक्षणाका हेतु स्वरूप कहे हैंः—वक्ताके तात्पर्यकी अनुपपत्ति लक्षणाका बीज है। नैयायिक अन्वयकी अनुपपत्ति लक्षणाका बीज कहे हैं, सो बनै नहींः—काहेतें यह तिनका अभिप्रा-

यहै, जहां वाक्यमैं स्थित पदोंके अर्थोंका परस्पर संबंध न बनै तहां लक्षणा होवै है; 'जैसैं गंगायां ग्रामः' या वाक्यमैं स्थित जो गंगा औ ग्रामपद तिनके अर्थ जो नगर औ नदीका प्रवाह, तिनका परस्पर संबंध बनै नहीं यातैं लक्षणा मानी है। या नैयायिक उक्तिका 'यष्टीः प्रवेशय' या वाक्यमैं व्यभिचार है; काहेतैं भोजनके समय उत्तम पुरुषनैं अन्य पुरुषकों कहा 'लष्टिका प्रवेश करावो' इहां लष्टिपदका अर्थ जो दंड ताका प्रवेश पदार्थसैं संबंध संभवैभी है, तथापि वक्ताके तात्पर्यके अभावतैं लक्षणा होवै है। यातैं तात्पर्य अनुपपत्तिहीं लक्षणामैं बीज है औ लक्षणाके ज्ञानमैं शक्यका ज्ञान उपयोगी है, काहेतैं शक्यसंबंध लक्षणाका स्वरूप है, शक्य जाने बिना शक्यसंबंधरूप लक्षणका ज्ञान होवै नहीं, यातैं शक्यका लक्षण कहे हैंः—जा पदमैं जा अर्थकी शक्ति होवै ता पदका सो अर्थ शक्य जान। अब लक्षणाका स्वरूप कहे हैंः—

शक्यका जो लक्ष्यार्थसैं संबंध, सो लक्षणाका सामान्य लक्षण है। अब लक्षणाके जहती आदि भेद औ तिनके लक्षण कहे हैंः—वाच्यार्थका परित्याग करिकै वाच्यार्थका संबंधी जो अन्य अर्थ तामैं जो पदका संबंध, सो जहती लक्षणा कहिये है। जैसैं "गंगामैं ग्राम है" या वाक्यमैं गंगापदका वाच्य जो प्रवाह ताकूं त्यागिके ताका संबंधी जो तीर तामैं गंगापदकी लक्षणा है। अथ अजहती लक्षणाः—वाच्यार्थकों न त्यागिकै वाच्यार्थका संबंधी-जो अन्य अर्थ तामैं जो पदका संबंध, सो अजहती लक्षणा कहिये है। 'यथा काकेभ्यो दधि रक्षतां' किसीनैं कहा 'काकोंतैं दधिकी रक्षा करना' सो मार्जारादिकोंतैं संरक्षणविना दधिकी रक्षा बनै नहीं, यातैं काकपदका शक्य जो वायस पक्षी, ताके संबंधी जो दधि उपघातक मार्जारादि, तामैं काकपदकी लक्षणा है। अथ भाग त्याग लक्षणाका स्वरूपः—शक्य अर्थके एक भागका परित्याग क-

रिके शक्य अर्थके एक भागमें जो पदका संबंध सो भागत्याग लक्षणा कहिये है । जैसैं प्रथम दृष्ट देवदत्तकूं अन्य देशमें देखकर कहे, 'सो यह देवदत्त है' तहां भागत्याग लक्षणा है; काहेतें परोक्षदेश अतीत काल सहित देवदत्त शरीर सो पदका अर्थ है, समीप देश औ वर्तमानकाल सहित देवदत्त शरीर यह पदका अर्थ है; अतीतकाल सहित अन्यदेश सहित जो वस्तु सोई वर्तमानकाल औ समीप देशसहित है, यह समुदायका वाच्य अर्थ है, सो संभवे नहीं:—काहेतें अतीतकाल औ वर्तमानकालका विरोध है, तथा अन्यदेशका औ समीपदेशका विरोध है, यातें परोक्षदेश अतीतकालरूप एक भागका त्याग करके एक भाग देवदत्त शरीरमात्रमें सो पदकी लक्षणा औ समीपदेश औ वर्तमानकालरूप एक भाग त्याग करके, एक भाग देवदत्त शरीरमात्रमें यह पदकी लक्षणा है। या रीतिसें लक्षणाके तीन भेद हैं। तिनमेंसैं महावाक्यमें ज़हती

अजहती संभवै नहीं औ भागत्याग या रीतिसैं है:-पूर्वोक्त वाक्यार्थके विरोधतैं तत्पदके वाच्यमैं जो माया औ मायाकृत सर्वशक्ति सर्वज्ञता आदि धर्म, इतने वाच्य भागकूं त्यागके, चेतनभागविषै तत्पदकी भागत्याग लक्षणा है। तैसैं त्वंपदके वाच्यमैं जो अविद्या अंश औ अविद्याकृत अल्पशक्ति अल्पज्ञता आदिधर्म, ताकूं त्यागकै चैतनभागमैं त्वंपदकी भागत्याग लक्षणा है । इस रीतिसैं भागत्याग लक्षणातैं ईश्वर औ जीवके स्वरूपमैं लक्ष्य जो चेतनभाग तिनकी एकता तत्त्वमसि महावाक्य बोधन करे हैं ।मूलमैं आदिपदसैं ग्रहण कीये जो 'अहंब्रह्मास्मि,' 'अयमात्मा ब्रह्म,' 'प्रज्ञानमानंदं ब्रह्म,' ये तीन महावाक्य, तिनमैंभी यही रीति जान लेनी ॥ २९ ॥

(५७) अब मननका स्वरूप औ फल कहे हैं:-

दोहा-जग प्रानी विच्छेपचित, तजौ

दूर तिन संग ॥ बैठी इकंत स्वतंत्र व्है, करै मनन सर्वंग ॥ ३० ॥

टीकाः—यद्यपि महावाक्योंसैं अभेद निश्चयतैं पश्चात्कर्तव्य नहीं, तथापि पूर्वोक्त रीतिसैं कहे अर्थमें जाकूं संशय होवै, सो जगत्‌में विक्षिप्तचित्त पुरुषोंका संग दूरतैं त्याग कर, एकांतस्थानमैं स्थिर होइ करकै औ सर्व औरतैं स्वतंत्र होइकै, जीवब्रह्मके अभेदकी साधक औ भेदकी बाधक युक्तियांसैं अद्वितीय ब्रह्मका चिंतनरूप मनन करै। सो युक्तियां यह हैंः—जैसैं सच्चित् आनंद लक्षण श्रुतिमें आत्मा कहा है, तैसैंही सच्चित् आनंद लक्षण ब्रह्म कहा है, यातैं ब्रह्मरूप आत्मा है। किंवाः—ब्रह्म नाम व्यापकका है। देशतैं जाका अंत नहीं होवै सो व्यापक कहिये, तातैं जो आत्मा भिन्न होवै तो देशतैं अंतवाला होवैगा। जाका देशतैं अंत होवै ताका कालतैंभी अंत होवै है यह नियम है, यातैं आत्मा अनित्य होवैगा। जाका कालतैं अंत

होवै सो अनित्य कहिये है। यातैं ब्रह्मसैं भिन्न आत्मा नहीं। किंवाः—आत्मासैं भिन्न जो ब्रह्म होवै तो, सो अनात्मा होवैगा, जो अनात्मा घटादिक हैं सो जड हैं, यातैं आत्मासैं भिन्न ब्रह्मबी जड-हीं होवैगा। किंवाः—अनुमानरूप युक्ति कहे हैंः— "जीवो ब्रह्माभिन्नः चेतनत्वात् यत्र यत्र चेतनत्वं तत्र तत्र ब्रह्माभेदः यथा ब्रह्मणि"। जो वादी यामैं यह शंका करे कीः—जीवरूप पक्षमैं चेतनत्वरूप हेतु तो है, ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं? या शंकाका तर्कसैं प्रहार करणा, अनिष्ट आपादनका नाम तर्क है। सो यह हैः—जीवरूप पक्षमैं चेतनत्वरूप हेतु मानकै ब्रह्माभेदरूप साध्य नहीं मानै तो ब्रह्मके अद्वितीयताकी प्रतिपादक 'एकमेवाद्वितीयंब्रह्म' या श्रुतिसैं विरोध होवैगा, श्रुतिसैं विरोध आस्तिक अधिकारीकूं इष्ट नहीं, या अनिष्ट आपादनरूप तर्कके भयतैं ब्रह्माभेदरूप साध्यका अभाव वादी कहे नहीं। इस रीतीसैं शंका निवृत्त होवै है। इ-

त्यादि युक्तियांसैं मनन होवै है। मननसैं निवर्त नीय संशय शास्त्रांतरमैं इस रीतिसैं कहा है:— संशय दो प्रकारका है, एक प्रमाणगत संशय है द्वितीय प्रमेयगत संशय है। प्रमाणगत संशय पूर्व कहा है। प्रमेय संशयबी आत्मसंशय औ अनात्मसंशय भेदसैं दो प्रकारका है। अनात्मसंशय अनंतविध है। ताके कहनेसैं उपयोग नहीं। आत्मसंशयबी अनेक प्रकारका है:—आत्मा ब्रह्मसैं अभिन्न है अथवा भिन्न है, अभिन्न होवै तौबी सर्वदा अभिन्न है अथवा मोक्षकालमें हीं अभिन्न होवै है; सर्वदा अभिन्न नहीं, सर्वदा अभिन्न होवै तौबी आनंदादि ऐश्वर्यवान् है अथवा आनंदादि रहित है, आनंदादिक ऐश्वर्यवान् होवै तौबी आनंदादिक गुण है अथवा ब्रह्मात्माका स्वरूप हैं; इसतैं आदि लेके तत्पदार्थाभिन्न त्वंपदार्थविषै अनेक प्रकारका संशय है। तैसैं केवल त्वंपदार्थ गोचर संशय बी आत्मगोचर संशय है:—

आत्मा देह आदिकोंतैं भिन्न है वा नहीं, भिन्न कहै तौबी अणुरूप है वा मध्यम परिणाम है वा विभु परिणाम है, विभु कहै तौबी कर्ता है अथवा अकर्ता है, अकर्ता है तौबी परस्पर भिन्न अनेक हैं अथवा एक है; इस रीतिके अनेक संशय केवल त्वंपदार्थ गोचर हैं । तैसैं केवल तत्पदार्थ गोचर बी अनेक प्रकारके संशय हैं:—वैकुंठादि लोक विशेषवासी ईश्वर परिच्छिन्न हस्तपादादिक अवयवसहित शरीरी है अथवा शरीररहित विभु है, जो शरीररहित विभु है तौबी परमाणु आदिक सापेक्ष जगत्का कर्ता है अथवा निरपेक्ष कर्ता है, परमाणु आदिक निरपेक्ष कर्ता कहै तौबी केवल कर्ता है अथवा अभिन्न निमित्तोपादानरूप कर्त्ता है जो अभिन्न निमित्तोपादान कहै तौबी प्राणी कर्म निरपेक्ष कर्त्ता होणेतैं विषम कारिता आदिक दोषवाला है अथवा प्राणीकर्म सापेक्ष कर्त्ता होणेतैं विषमकारिता आदिक दोषरहित है; इसतैं आदि अ-

नेक प्रकारके तत्पदार्थ गोचर संशय हैं। सो सकल संशय प्रमेयसंशय कहिये हैं। तिनकी निवृत्ति मननसैं होवै है॥ ३०॥

अब पूर्व कहे फलकूं पुनः स्पष्ट करे हैं:–

दोहा– नितप्रति करत विचारकै, स्थिरता पावै चित्त॥ बोध उदय छिन छिन करे, जान्यो नित्य अनित्य॥ ३१॥

टीका:–नित्यप्रति युक्तियोंसै ब्रह्मके चिंतन रूप विचारके कियेतैं प्रतिक्षण बोधकी निःसंदेहता होवै है, तातैं ब्रह्मात्माका अभेदरूप जो प्रमेय तामैं चित्तकी स्थिति होवै है, काहेतैं जातैं ऐसैं जान्या है:–नित्य कहिये ब्रह्मात्माका नित्यहीं अभेद है औ अनित्य कहिये ब्रह्मात्माका भेद उपाधिकृत होनेतैं अनित्य हैं औ नित्य अर्थमैंही मुमुक्षुकी स्थिति होवै है यह नियम है॥ ३१॥

(५८) अब जगत् सत् है, आत्मा कर्ता भो-

क्ता है औ ब्रह्मात्माका भेद सत्य है, इस विपरीत ज्ञानरूप विपर्ययके हुये कर्तव्य कहे हैंः—

दोहाः—शुद्ध स्वरूप प्रकासमैं, कछु प्रवेसतां होइ ॥ साधन पाई प्रौढता, निदिध्यासन कहि सोई ॥ ३२ ॥

टीकाः—यद्यपि श्रवण मननरूप साधनकी दृढतासैं प्रमेय औ प्रमाणगत संशय तो संभवै नहीं, तथापि पूर्व अभ्यस्त वासनाके वशतैं प्रकाशरूप प्रत्यक् अत्मामैं जाकूं कर्तृत्वभोक्तृत्वकी प्रतीतिरूप विपर्यय होवै सो पुरुष अनात्माकार वृत्तिरूप व्यवधानरहित ब्रह्माकार वृत्तिकी स्थितिरूप निदिध्यासन करे ॥ ३२ ॥

(६९) अब निदिध्यासनका अवांतर फल कहे हैंः—

दोहाः—कामादिक समता उदै, भये

सु यहि प्रकार ॥ निस आगम प्रानी सवै, होत अल्प संचार ॥ ३३ ॥

टीका:—व्यवधानरहित ब्रह्माकार वृत्तिरूप समताके उदक भयां जो फल होवै सो कहैहैं:—जौनसीयां कामक्रोधरूप वृत्तियां पुरुषकै हृदेमैं पूर्व निरंतर होतीयां थीयां, सो निदिध्यानके कीये कदाचित् होवै हैं। दृष्टांत:—जैसे रात्रिके आगमनसैं पुरुषोंका गमनागमनरूप संचार स्वल्प होवै है तैसैं ॥ ३३ ॥

(६०) अब संशय विपर्ययसैं रहित तत्त्वज्ञानके उदय भये कर्तव्यका अभाव कहे हैं:—

दोहा:—सनै सनै साछातता, उदय भई जब जांहि ॥ है नाहीं सुभ असुभ सुख, दुष नहीं दरसै तांहि ॥ ३४ ॥

टीका:—श्रवण मनन निदिध्यासनके करते हुये जब जिस महात्माकूं तत्त्वज्ञान उदय भया,

तब ताकूं विधिनिषेध नहीं है । सोइ कहा है;— "निस्त्रैगुण्यमार्गमैं जो विचरताहै, ताकों को विधि है को निषेध है" औ ताकूं सुख दुःखबी अपणें आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं । यद्यपि अहं सुखी अहं दुःखी यह अहंकार विद्वान्‌मैं बी प्रतीत होवै है ? तथापि अहं शब्दके तीन अर्थ हैं:—एक मुख्य अर्थ औ दो अमुख्य हैं। पदकी शक्ति वृत्तिकर जो प्रतीत होवै सो मुख्य अर्थ कहिये है औ लक्षणाकर प्रतीत होवै सो अमुख्य कहिये है । तथाहि:— आभास सहित कूटस्थ अहंशब्दका मुख्य अर्थ है या अर्थमैं अहंशब्दकूं मूढ पुरुष जोडते हैं औ अंतःकरण सहित आभास अरु कूटस्थ ये दोनों भिन्न भिन्न अहंशब्दके अमुख्यार्थ हैं । इनमैं लौकिक शास्त्रीय व्यवहारमैं अहंशब्दकूं विद्वान् क्रमकर जोडते हैं। "अहं गच्छामि अहं तिष्ठामि अहं सुखी अहं दुःखी " या लौकिक व्यवहारमैं अहंशब्दकूं विद्वान् साभास अंतःकरणमैं जोडता है। " असं-

गोऽहं चिदात्माऽहं" या शास्त्रीय व्यवहारमैं अहंशब्दकूं विद्वान् कूटस्थात्मामैं जोडता है। यद्यपि साभास अंतःकरण अध्यस्त है, सो सुख दुःखका आश्रय बनै नहीं, काहेतैं जो अध्यस्त होवै सो अन्यका आश्रय होवै नहीं यह नियम है। जैसैं रज्जुमैं अध्यस्त सर्प, अपनी गमनादि क्रियाका आश्रय बनै नहीं तैसैं; तथापि अज्ञानतो सुद्धचेतनमैं अध्यस्त है औ अज्ञान उपहितमैं अंतःकरण अध्यस्त है, अंतःकरण उपहित जीव साक्षीमैं सुखदुःखादि अध्यस्त हैं। इस रीतिसैं अध्यस्त जो धर्मादिक तिनका अधिष्ठान आत्मा है। अध्यासके अधिष्ठानपनैका अंतःकरण उपाधि है, यातैं साभास अंतःकरणके धर्म हैं यह कहा, धर्मादिक अंतःकरणके धर्म होवैं अथवा अंतःकरणविशिष्ट प्रमाताके धर्म होवैं अथवा रज्जु सर्प स्वप्नपदार्थोंकी न्याई किसीके धर्म न होवैं, सर्व प्रकारसैं आत्माके धर्म नहीं:

यातैं विद्वान्‌कूं सुख दुःख आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं, यह कहा ॥ ३४ ॥

(६१) ग्रंथ अभ्यासका फल कहेहैं;–

दोहाः–चली पूतरी लवनकी, थाह सिंधुको लैन ॥ अनाथ आप आपै भई पलटि कहै को बैन ॥ ३५ ॥

टीकाः–जैसे कोई पुरुष लवणकी पूतरीकूं रसीसैं बांधके समुद्रके जल मापणे अर्थ फैंकै, सो जलरूप होई पुनः जलसैं बाहीर नहीं आवैहै; तैसैं या ग्रंथके अभ्यास कीयेतैं ज्ञानद्वारा ब्रह्मकूं प्राप्त होईकै पुनः जीवभावकूं प्राप्त नहीं होवैहै । यह गीतामैं कहाहैः–' यद्गत्वा न निवर्तंते ' ' जिस ब्रह्ममैं प्राप्त होइके पुनः नहीं निवृत्त होवे हैं, ' । यद्यपि मूलमैं दार्ष्टांत नहीं, तथापि दृष्टांतके बलतैं ताकी कल्पना करी है ॥ ३५ ॥

दोहा–अलं तुरिय विश्राम यह,

साधन ज्ञान अलाप ॥ पढै याह अन-
यासही, लखे ब्रह्म चिद आप ॥ ३६ ॥

इति श्रीविचारमालायां ज्ञानसाधनवर्णनं ना-
म चतुर्थविश्रामः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ जगदात्मवर्णनं नाम

पंचम विश्रामप्रारंभः ॥ ५ ॥

(६२) शिष्य उवाच ।

दोहा–साधन ज्ञान लह्यो भलै, भग-
वन तुम प्रसाद ॥ किह प्रकार आत्मा
जगत मो मन अधिक विषाद ॥ १ ॥

टीकाः–अर्थ स्पष्टभाव यह हैः–हे भगवन्
आत्मामैं जगत् सत्य है अथवा असत्य है, सत्य
कहो तो ब्रह्मज्ञानसैं ताकी निवृत्ति नहीं चाहिये
औ असत्य कहो तो प्रतीत हुवा नहीं चाहिये ?
इस आकांक्षाके भयां, द्वितीयपक्षकूं अंगीकार
कर कहे हैं ॥ १ ॥

(६३) श्रीगुरुरुवाच ।

दोहा–अहो पुत्र कीजै नहीं, रंचक ऐसो भर्म ॥ कहां जगत ईश्वर कहां, यह सब मनके धर्म ॥ २ ॥

टीकाः–हे शिष्य ! आत्मामैं जगत् सत्य है ऐसा भ्रम भूल करवी नहीं करणा; काहेतैं जगत् स्वरूपतैं हैही नहीं तो तामैं सत्ताका ज्ञान कैसा होवै । जातैं कार्यरूप जगत्का अभाव है, तामैं ताका कर्ता ईश्वर कहां है। ईश्वर ज़ीव दोनौं कल्पित हैं, यह पंचदशीमैं कहा हैः– 'माया आभास करके जीव ईश्वर दोनोंकूं करे है, या श्रुतिके श्रवणतैं, तिन दोनोंने सर्व प्रपंच कल्प्या है, कल्पित वस्तु अधिष्ठानमैं अत्यंत असत् होवै है, यातैं जगत् औ ईश्वरका अभाव कहा है; इनमैं प्रतीत मन कृत है ॥ २ ॥

दोहा–राग द्वेष मनके धर्म, तूं तो

मन नहि होई ॥ निर्विकल्प व्यापक अमल, सुखस्वरूप तूं सोई ॥ ३ ॥

टीकाः—जैसैं जगत्मैं सत्ता प्रतीति मनका धर्म है, तैसैं तामैं राग द्वेषबी मनके धर्म हैं, सो मन तूं नहीं। जो कहै मनसै भिन्न मेरा क्या स्वरूप हैं? तहां सुन! निर्विकल्प कहिये तर्कसें रहित व्यापक, मलरहित, सुखस्वरूप जो चेतनब्रह्म, सो तूं है ॥ ३ ॥ पुर्व शिष्यनें कहा जगत् असत् होवै तो प्रतीत न हुवा चाहिये याका उत्तर कहेहैं:—

दोहा- जग तोमें तूं जगत्में, यों लहि तजहंकार ॥ मैं मेरो संकल्प तजि सुखमय अवनि विहार ॥ ४ ॥

टीकाः—यह जगत् संपूर्ण तेरे स्वरूपमैं कल्पित है। जातैं कल्पितकी प्रतीति अधिष्ठानविना होवै नहीं, तातैं जगत्मैं अधिष्ठानरूपतैं तूंही स्थित है ऐसें जानकर, मैं कर्ता भोक्ता हूं अरु

यह वस्तु मेरी है औ मैं संकल्पका कर्ता हूं या प्रच्छिन्न अहंकारकूं त्यागकर शांतचित्त हुवा प्रारब्धके अनुसार पृथ्वीपर चेष्टा कर ॥ ४ ॥

औ जे कहो मिथ्या जगत्की प्रतीति कर तत्त्वज्ञानकी हानि होवैगी ? तहां सुनोः–

दोहा– अज्ञान नींद स्वप्नो जगत, भयो सुखद कहूं त्रिस्य ॥ ज्ञान भयो जाग्यो जबै, दृष्टादृष्टि न दृश्य ॥ ५ ॥

टीकाः--जैसें निद्रा समय स्वप्न जगत् कहुं सुखदाई प्रतीत होवे है, कहुं दुःखप्रद प्रतीत होवे है; परंतु जब पुरुष जाग्या तब स्वप्न जगत्की स्मृतिकर जाग्रत् बोधकी हानि होवै नहीं; तैसैं अज्ञानरचित दृष्टादृष्टि दृश्यरूप जगत् तत्त्वज्ञानके हुये प्रतीतिबी होवै है, तोबी ताकर ज्ञानका बाध होवै नहीं । यह पंचदशीमें लिख्या हैः– "बोधकर मारे हुवे अज्ञान तत्कार्यरूप शव, स्थितबी हैं तथापि

बोधरूप चक्रवर्ती राजाकूं तिनोंतैं भय नहीं; प्रत्यु-
त तिस कर्ताकी कीर्ति होवै है" ॥ ५ ॥

(६४) अरु जो कहो, पूर्व रीतिसैं बोधकी हा-
नि काहेतैं नहीं होवैं है? तहां सुनोः—

**दोहा—छुधा पिपासा सोक पुन, ह-
रष जन्म अरु अंत ॥ ये षट उर्मी धर्म
तन, आत्मा रहित अनंत ॥ ६ ॥**

टीकाः—ये षट् उर्मी स्थूल सूक्ष्म शरीरका
धर्म हैंः—क्षुधा पिपासा प्राणके धर्म हैं; शोक हर्ष
मनके धर्म हैं, जन्म मृत्यु स्थूलशरीरके धर्म हैं,
औ अनंतात्मा इन षट् उर्मीतैं रहित विद्वानकूं प्र-
तीत होवै है, यातैं आत्माका असंग ब्रह्मरूपसैं जो
ज्ञान सो निवृत्त होवै नहीं । देशकालवस्तुकृत प-
रिच्छेदतैं रहितकूं अनंत कहे हैं। ब्रह्मरूप आत्मा श्रु-
तिमैं व्यापक कहा है, यातैं देशकृत परिच्छेदतैं र-
हित है औ अनित्य वस्तुका कालतैं अंत होवै है,

आत्मा नित्य है, यातैं कालकृत परिच्छेदतैं रहित है औ आत्मा सर्वरूप है, यातैं वस्तुकृत परिच्छेदतैं रहित है। परिच्छेद नाम अंतका है ॥ ६ ॥

अब प्रसंग प्राप्त केवल स्थूलशरीरके धर्म दिखावै हैं:–

दोहा–जन्म अस्ति अरु वृद्ध पुनि, विप्रनमछय तननास ॥ षट् विकार ये-देहके, आत्मा स्वयंप्रकाश ॥ ७ ॥

टीका:–अर्थ स्पष्ट ॥ ७ ॥

हे भगवन्! मैं जन्मता मरता हूं इस रीतिसैं जन्मादि षद्विकार मुजमैं प्रतीत होवै हैं; आप कैसैं इनका निषेध करो हो? तहां गुरु कहे हैं:–

दोहा:–चिदाकाश अद्वय अमल, सात एकतवरूप ॥ जन्म मरन कित संभवै, कित हंकार अनूप ॥ ८ ॥

टीका:–हे शिष्य! जो चेतन आकाश द्वैततैं

रहित औ मलतैं रहित औ सृष्टि आदिकोंके क्षो भतैं रहित औ सजातीय विजातीय स्वगत भेद-रहित एक चिद्वस्तु है, सो तेरा आत्मा है, तामें जन्ममरणका संभव कैसे होवै औ उपमासैं रहित तेरे आत्मामैं मैं जन्मता मरता हुं यह अहंकार कैसैं संभवै! इहां जन्ममरणके निषेधतैं समग्र वि-कारोंका निषेध कीया ॥ ८ ॥

हे भगवन् ए षट्विकार स्थूल देहके धर्म हैं; मेरे नहीं, परंतु मैं सुखी मैं दुःखी या रीतिसैं सु-ख दुःखकी प्रतीति मेरे आत्मामैं होवै हैः यातैं मैं भोक्ता हुं? तहां गुरु कहै हैः-

दोहा-विषय भोग इस्थान तन, साधक इंद्रिय जोय ॥ आही भोक्ताबुद्धि मन, तूं न चतुष्टय होय ॥ ९ ॥

टीकाः-शब्दादि पचविषयरूप भोग्य है औ तिनके भोगणेका स्थान स्थूल शरीर है औ भो-

क्ताके प्रतीतिन भोगोंके निवेदन करणेवाले चक्षु-रादि इंद्रिय हैं औ मन बुद्धि उपलक्षित लिंगशरी-रस्वप भोक्ता है; तूं इन सर्वोंका प्रकाशक चिदात्मा इनतैं भिन्न है, यातैं भोक्ता नहीं ॥ ९ ॥

औ जे कहो बाधित अनुवृत्तिकर प्रतीयमान जो आत्मसंबंधी स्थूल सूक्ष्म शरीर, तिनमैं पुनः आत्मप्रतीति होवैगी? यह आशंकाकर, आत्मा अनात्माके सादृश्यके अभावतैं होवै नहीं, यह कहे हैंः—

दोहाः—कारन लिंग स्थूल तन, मन बुधि इंद्रिय प्रान ॥ एजड तोहि लहैं न-हीं, तूं चैतन्य प्रमान ॥ १० ॥

टीकाः—अनिर्वचनीय अनादि अविद्यारूप कारण शरीर औ दशइंद्रिय औ पंचप्राण औ मन अरु बुद्धि ए सप्तदश अवयवरूप लिंगशरीर औ अन्नमयकोशरूप स्थूलशरीर ये तीनो शरीर तेरी

सादृश्यताकूं पावैं नहीं। जातें यह जड हैं औ तूं चैतन्य है; यातें सादृश्यताके अभावतें पुनः इनमें आत्मप्रतीति होवै नहीं। जे कहो, आत्मा चैतन्य है थामैं क्या प्रमाण है ? तहां सुनोः—" य एष हृद्यंतर्ज्योतिः पुरुषः " यह श्रुति प्रमाण है 'यह सर्वके अपरोक्ष हृदयके अंतर पुरुष प्रकाशरूप है' ॥ १० ॥

(६६) ननु अनात्मामैं आत्मप्रतीति ज्ञानवानकूं मत होवै, परंतु आत्मामैं त्रिते शरीररूप अनात्मा कौन संबंधकर प्रतीत होवै है यह कहो ? तहां सुनोः—

दोहा—एक तंतुमैं त्रिगुनता, उरझ ग्रंथि बहुभाय ॥ ऐसै सुद्ध स्वरूपमैं, अनाथ जगत दरसाय ॥ ११ ॥

टीकाः—जैसैं एक तंतूमैं प्रथम तीन तागे बनायके पुनः तिनकूं उरझायके ग्रंथि कहिये मणके

बनावै हैं, सो मणके जैसें नामरूपसैं तंतुमैं कल्पित संबंधसैं प्रतीत होवै हैं; तैसें शुद्धरूप चिदात्मामें त्रिते शरीररूप जगत् कल्पित तादात्म्य संबंधसैं प्रतीत होवे है ॥ ११ ॥

(६६) ननु लिंगशरीरादिरूप उपाधि तो मिथ्या संबंधसैं प्रतीत होवै, परंतु तामैं आभास तो सत्य है? तहां सुनोः–

दोहा–वसनपुतरी बसनमय, नाना अंगअनूप ॥ एक तंतु विन नहिं बियो त्यों सब सुद्ध स्वरूप ॥ १२ ॥

टीकाः–नाना करचरणादि अंगोंसहित व स्वरूप मूर्ति औ ताके शरीरपर श्वेत पीतरूप वस्त्र है, सो दोनों तंतुमैं कल्पित हैं, काहेतैं विचार किये तंतुसैं भिन्न प्रतीत होवै नहीं; तैसें सब कहिये त्रिते शरीर औ आभास, कल्पित होणेतैं शुद्ध स्वरूप आत्मासैं अतिरिक्त नहीं ॥ १२ ॥

ननु ऐसे है तो पदार्थोंसैं हर्ष शोक क्यूं होवै है? ए शंकाकर विचारविना होवै है, यह कहे हैः—

दोहा—देखि षिलोनें षांडके, आनंद भयो मन मांहि ॥ चाह करी जब वस्तुकी, तब सब लय हुइ जांहि ॥ १३ ॥

टीकाः—गजरथादिरूप खिलोन्योंकूं देखकर बिना विचारसैं पुरुषके चित्तमैं आनंद होवै है; पुनः ए खांडहीं है ऐसा विचार कियेसैं खांडमैं लय हुये खिलोनैं आनंदके जनक होवैं नहीं; तैसैं विचार बिना देहादि पदार्थ आनंदकर होवै हैं विचारकर आत्मवस्तुरूप अधिष्ठानकूं जब जान्या तब अध्यस्त पदार्थ सर्व अधिष्ठानमैं लय हुये आनंदके जनक होवै नहीं ॥ १३ ॥

(६७) अब अधिष्ठान ज्ञानशून्य पुरुषोंकी निंदा करै हैः—

दोहा—लह्यो न सुद्ध स्वरूप जिन,

कहा कह्यो तिन कूर ॥ साखा दल सींचत रह्यौ, जोनहींसीच्यो मूर ॥ १४ ॥

टीका:—जिन पुरुषोंनैं निरावरण ब्रह्मरूप अधिष्ठानकूं न जानके यज्ञादि कर्मोंमैं वा ब्रह्मभिन्न देवनकी उपासनामैं निश्चय कीया, तौ तिन पुरुषोंनैं क्या निश्चय कीया ! जातैं कर्मउपासनाका फल कृषी आदिकोंकी न्यांई विनाशी कहा है । जे कहो ब्रह्मकूं सर्वरूप होणेतैं ब्रह्मादि देवभी ब्रह्मरूपहीं हैं, यातैं देवनकी उपासनाका निषेध बनै नहीं; तथापि अविद्या तत्कार्यकी निवृत्ति औ आनंदावाप्तिरूप मोक्ष, शुद्धब्रह्मके ज्ञानतैंहीं होवै है, यह पंचदशीमैं लिख्या है तामें दृष्टांत कह्या है:—जैसैं पुरुषकूं वृक्षके मूलमैं जलका न सिंचन करकै, शाखा औ पत्योंमैं जल सिंचनतैं फलकी प्राप्ति होवै नहीं ॥ १४ ॥

(६८) ननु देवादिरूप जगत् ब्रह्ममैं स्वाभा-

विक प्रतीत होवैहै, वा नैमित्तिक है, स्वाभाविक कहो तो, निवृत्त न हुआ चाहिये औ निवृत्त होवै है, यातें नैमित्तिक है, यह कहो सो निमित्त कौन है, यह कह्या चाहिये ? तहां सुनोः—

दोहा—जैसें सांचेमें पर्‍यो, होत कनक बहुअंग ॥ नानावत यों ब्रह्ममें-लै उपाधिको संग ॥ १५ ॥

टीकाः—जैसे मूषेके संबंधसें कटकादिरूप नानात्व कंचनमें प्रतीत होवै है, तैसें ब्रह्ममें नानात्वकी प्रतीति मायारूप उपाधिके संबंधसें होवै है १५

(६९) ननु यह कहनेमें परिणामवाद प्रतीत होवै है, काहेतें पूर्वरूपकूं त्यागके रूपांतरकी प्राप्तिकूं परिणाम कहे हैं। जैसें शीतरूप उपाधिके संबंधसें दुग्धरूपताकूं त्यागिके दुग्ध दधिरूप होवै है; तैसें ब्रह्मभी मायारूप उपाधिके संबंधतें ब्रह्मभावकूं त्यागिके जगत्‌रूप परिणामकूं प्राप्त होवै, तो दु-

ग्धादिकोंकी न्यांई विकरी हुवा चाहिये? यह शंका सिद्धांतके अज्ञानतैं होवै है, काहेतैं सिद्धांतमैं विवर्तवाद अंगीकार कीया है। पूर्वरूपकूं न त्यागके रूपांतरकी प्राप्तिकूं विवर्त कहे हैं। ब्रह्म, अपने सत्यादि लक्षणरूप स्वरूपकूं न त्यागकै आकाशादि जगत्स्वरूपसैं प्रतीत होवै है, या अर्थके साधक दृष्टांतोंकूं पंच दोहोंकर कहै हैः—

दोहा—मृद विकार मृदमय सकल हिमविकार हिम जान ॥ तंतु विकार सु तंतु ही, यों आतम जग जान ॥ १६॥

देखि रज्जुमैं सर्पता ठुंठ,चौरके भाय ॥ रजत विचाऱ्यौं सुक्तिमैं, आयो मन ललचाय ॥ १७ ॥

भयौ बघूरा वायुमैं, अग्नि चिनग बहु अंग ॥ बीजहिमैं, तरुवर यथा, जलनिधि मध्य तरंग ॥ १८ ॥

मिश्रिकी तूंबी रची, रंगरूप ता मा-
हि ॥ खान लग्यो जब भर्म तजि, सो
तब करवी नांहि ॥ १९ ॥

पावकमैं दीपक घने, नभमैं घट मठ
नाम ॥ नीरमांझ ओरा भयो, यों जग
आतमाराम ॥ २० ॥

टीकाः—पांच दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह
हैः—जैसे घटादि मृदादिकोंका विवर्त होनेतैं मृदा-
दिरूप हैं, तैसैं सर्व जगत् ब्रह्मका विवर्त होनेतैं
ब्रह्मरूप है ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

दोहा—सत्य कहों तो है नहीं, मिथ्या
कहों तु आहि ॥ कह अनाथ आश्चर्य
महा, अकह कह कहिय काहि ॥ २१ ॥

टीकाः—पूर्वोक्त विवर्तरूप जगत्, सत्य कहैं
तो बनै नहीं, काहेतैं तीनकालमैं जाका बाध न

होवै सो सत्य कहिये है। प्रपंचका अधिष्ठान ज्ञानतैं बाध निश्चय होवै है, यातैं मिथ्या कहणा संभवै है। मिथ्याकूंही अनिर्वचनीय कहे हैं। जो किसी वचनका विषय न होवै ताकूं अनिर्वचनीय नहीं कहे हैं, किंतु सत्य असत्यतैं विलक्षणका नाम अनिर्वचनीय हैं। रूपवान् औ प्रातीतक सत्ताका आश्रय सत्य विलक्षण शब्दका अर्थ है औ असद्विलक्षण कहिये बाधके योग्य ऐसा घटादि सर्व प्रपंच है। जे कहो अधिष्ठानका स्वरूपभी कह्या चाहिये तहां सुनोः—सो आश्चर्यरूप है, काहेतैं सर्वकूं प्रकाशता हुवाबी आप किसीका विषय होवै नहीं यातैं वाणीकर कह्या जावै नहीं ॥ २१ ॥

सोरठा—भयो सु पंचम सांत, जगदात्मका एकत्व कहि ॥ पढै होई हत भ्रांत, जगदात्मा चिद एक लहि ॥ २२॥

इति श्रीविचारमालायां जगदात्मवर्णनं नाम पंचमविश्रामः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ जगन्मिथ्यावर्णनं नाम

षष्ठविश्रामप्रारंभः ॥

(७०) अब षष्ठे विश्राममैं जगत्का अत्यंताभाव दिखायवे अर्थ, प्रथम शिष्यका प्रश्न लिखे हैः—

शिष्यउवाच.

दोहा—भो भगवन् मोमन भयो, संशय देहु निवार ॥ जग मिथ्या किहि विध कह्यौ, मोप्रति कहो विचार ॥ १ ॥

टीकाः—हे भगवन् ! पूर्व आपनैं जगत्कूं मिथ्या जिस रीतिसैं कहा है, यह अर्थ मेरी बुद्धिमैं आरूढ भया नहीं यातैं मेरे चित्तमैं संदेह है ताकी निवृत्ति अर्थ आप पुनः सो विचार कहो जातैं संदेह दूर होवै ॥ १ ॥

(७१) अब शिष्यके संदेह दूर करणे अर्थ, वि-

द्वान्‌की दृष्टिमैं अविद्या तत्कार्यरूप जगत् अत्यंत असत्य है यह कहै हैं, काहेतैं यह शास्त्रमैं कहा हैः—गुरुमुखात् तत्त्वमस्यादि महावाक्यके श्रवण कीये उदय भयी जो ब्रह्माकारवृत्ति, ता वृत्तिके उदयमात्रतैं हीं कार्यसहित अविद्या न पूर्व थी, न अब है, न भविष्यत् होवैगी, यह तिस विद्वान्‌कूं प्रतीत होवै है; या अर्थके साधक दृष्टांतोंकूं कहेहैंः— ॥ श्रीगुरुरुवाच ॥ जग मिथ्या दरसावत हैंः—

दोहा—सीतल जल मृगतृष्णको, गगन कमलकी बास ॥ सुंदर अति वंध्या सुमन, ऐसैं जगत प्रकास ॥ २ ॥

टीकाः—जैसे वासिष्ठमैं मूर्ख बालककी प्रसन्नता अर्थ धात्रीने भविष्यत् नगरकी कथा श्रवण करवाई है, तैसैं किसीने कहा मरुस्थलका जल अति शीतल है औ आकाशके कमलमैं अ-

ति सुगंधि है औ वंध्याका पुत्र वस्त्रोंभूषणोंके सहित सुंदर स्वरूपवान् है। हे शिष्य! ए पदार्थ जैसें अत्यंत असत् भी अर्थाकार प्रतीत होवै हैं, तैसें अत्यंत असत् जगत् अर्थाकार प्रतीत होवै है ॥ २॥ पूर्वोक्त अर्थके साधक दृष्टांतोंकों सप्त दोहोंकर कहे हैं:—

दोहा—ज्यों नभमैं कल्पी घनी, पूतरि विविध अनेक॥ करत युद्ध अति क्रोधयुत, ऐसो जगत विवेक ॥ ३ ॥

अनाथ स्वप्न काहू नरहीं, दिसनविषै भ्रम होय॥ पूरव तज पश्चम गयो, तिह विषाद जग सोय ॥ ४ ॥

रविकी रश्मि समेटिके, करी गुंथ रुचि माल॥ पहिरे बंध्याको सुमन, सोभा बनी बिसाल ॥ ५ ॥

ससे सृंगको धनुषकरी, गगन पुरुष लिये जाय ॥ देखि माल लालच लग्यो, पुन पुन मागत ताही ॥ ६ ॥

वह मांगत वह देत नहिं, बडी परस्पर रार ॥ ना कछु भयो नहै कछु, ऐसो जगत विचार ॥ ७ ॥

गगन सिंधुकी लहरी ले, आन बनायो धाम ॥ ऐसें पूरन ब्रह्ममें, देखि जगत अभिराम ॥ ८ ॥

मृगतृष्णाको नीर लै, सींच्यो नभ अंभोज ॥ ता सुगंध आई सरस, आहि जगत यह खोज ॥ ९ ॥

टीकाः—अर्थ स्पष्ट। भाव यह हैः—जैसें आकाशादिकोंमें पुरुषकल्पित पुतली आदि पदार्थ अत्यंत असत् हैं, तैसें ब्रह्ममें आकाशादि प्रपंच अ-

त्यंत असत्य है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

(७२) अब स्थूणाखनन न्यायकर पूर्वोक्त अर्थके दृढ करणेकों, तामैं शिष्य शंका करै हैः–

शिष्य उवाच ।

दोहा–जगत् जगत् सबको कहै, अरु पुनि देषिय नैन ॥ सो मिथ्या किहि विध कह्यो, आरत जन सुखदैन ॥ १० ॥

टीकाः–हे आरतजनोंकूं सुख देणेवाले श्रीगुरो ! संपूर्ण श्रुति स्मृति वचन जगतका सद्भाव कहे हैं। पुनः प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकरभी जगत् प्रतीत होवै है, आप जगत्कूं अत्यंत असत्य किस रीतिसैं कहो हो ।जे जगत् अत्यंत असत्य होवै तो उत्पत्ति प्रतिपादक ‘ यतो वा इमानि भूतानि जायंते, तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ’ इत्यादि वाक्य हैं, वे विषयके अभावतैं व्यर्थ होवैंगे ‘जातैं निश्चय करके ये भूत उत्पन्न होवै हैं, ’ ‘ब्राह्म-

ण प्रतिपाद्य वा मंत्र प्रतिपाद्य आत्मातैं आकाश उत्पन्न होवै है,' यह तिनका अर्थ है। प्राप्त सत् वस्तुका निषेध होवै है, जगत् अत्यंत असत् होवै तो निषेध प्रतिपादक 'तरति शोकमात्मवित्' इत्यादि वाक्य बी व्यर्थ होवेंगे औ कार्यके अभावतैं कारणरूप ईश्वरका अंगीकारबी निष्फल होवैगा; इत्यादि अनेक शंका मेरे तांई होवै हैं सो आप निवृत्त करो ॥ १० ॥

(७३) जगत्का अत्यंताभावरूप जो उत्तम सिद्धांत, ताकूं हृदयमैं धरके गुरु, जगत्का अनिर्वचनीयत्व दिखावते हुये शिष्यकी शंकाका समाधान करे हैं दोदोहोंकरः— श्रीगुरुरुवाच।

दोहा– रज्जु देखि प्रानी घने, कल्पैं बहुत प्रकार ॥ को तरुजर को सरप कहि, को कहि पुहमिदरार ॥ ११ ॥

सुक्ति निरखि बहु भेद लहि, प्रानी

कल्पैं ताहि ॥ को भोढरको रजत कहि, को कहि कागर आहि ॥ १२ ॥

दो दोहोंकी एकठी टीकाः—हे शिष्य ! जैसें रज्जु-का सामान्यरूप इदंताकूं देखके बहुत पुरुष बहुत अनिर्वचनीय पदार्थोंकी कल्पना करे हैं:—कोउ कहे है यह वृक्षकी जड़ है, कोउ सर्प कहे है, काहुकूं पृथिवीकी रेखा प्रतीत होवै है, । तथा सुक्तिके सामान्य इदं अंशकूं देखकै स्वस्वसंस्कारके अनुसार अनेक पदार्थोंकी कल्पना करे हैं:— कोउ अबरक कल्पे है, कोउ रजत, कोउ कागदकी कल्पना करे है । यह सर्प रजतादि समग्र पदार्थ अनिर्वचनीय उत्पन्न होवे हैं । अनिर्वचनीय ख्यातिका संक्षेपतैं यह प्रकार है:—सर्प संस्कार सहित पुरुषके दोष सहित नेत्रका रज्जुसें संबंध होवे है औ रज्जुका विशेष धर्म रज्जुत्व भासे नहीं औ रज्जुमें जो मुंजरूप अवयव हैं सो भासें नहीं, किंतु रज्जुमें सामान्यधर्म इदंता

भासै है। तैसें सुक्तिमें सुक्तित्व औ नीलपृष्ठता त्रि-
कोणता भासै नहीं, किंतु सामान्य धर्म इदंता भा-
सै है; यातें नेत्रद्वारा अंतःकरण रज्जुकूं प्राप्त होइकै
इदमाकार परिणामकूं प्राप्त होवै है; ता इदमाकार
वृत्ति उपहित चेतननिष्ठ अविद्याके सर्पाकार औ
ज्ञानाकार दो परिणाम होवै हैं। तैसें दंड संस्कार-
सहित पुरुषके दोष सहित नेत्रका रज्जुके संबंधसैं
जहां वृत्ति होवै तहां दंड औ ताका ज्ञान अविद्याके
परिणाम होवै हैं। मालासंस्कारसहित पुरुषके स-
दोष नेत्रका रज्जुसैं संबंध होइके इदमाकार वृत्ति
होवै, ताकी वृत्ति उपहित चेतनमें स्थित अविद्या-
का माला औ ताका ज्ञान परिणाम होवै है। जहां
एक रज्जुसैं तीन पुरुषनके सदोष नेत्रनका संबंध
होईकै सर्प दंड माला एक एकका तिन्हकूं भ्रम होवै
तहां जाकी वृत्ति उपहितमैं जो विषय उपज्या है
सो ताहीकूं प्रतीत होवै है अन्यकूं नहीं। इस री-
तिसैं रज्जु शुक्ति आदिकोमैं सर्प रजतादि औ ति-

नके ज्ञान अनिर्वचनीय उत्पन्न होवै हैं ॥ ११॥१२॥

अब दृष्टांतकरी कहे अर्थकूं दार्ष्टांतमैं जोडे हैं:-

दोहा—पूरन अद्वय आत्मा, अव्यय अचल अपार ॥ मिथ्याही कल्प्यो घनो, तामैं यह संसार ॥ १३ ॥

टीका:—व्यापक, द्वैतसैं रहित नाशतैं रहित, क्रियासैं रहित, देशपरिच्छेदतैं रहित जो आत्मा, ताके बोधअर्थ, श्रुतिनैं तामैं यह नानारूप संसार मिथ्या कल्प्या है। मिथ्याकूं ही अनिर्वचनीय कहे हैं। या पक्षकूं अंगीकार कियेसैं पूर्वोक्त सर्वशंका निवृत्त होवै हैं; काहेतैं अनिर्वचनीय जगत्की उत्पत्ति कथन संभवै है, यातैं उत्पत्तिबोधक वाक्य निष्फल होवैं नहीं, तथा अधिष्ठान ज्ञानसैं ताकी निवृत्तिं बी संभवै है, यातैं निवृत्तिबोधक वाक्य निष्फल होवैं नहीं औ अनिर्वचनीय जगत्की अ-

निर्वचनीय कारणताके संभवतैं ईश्वरका अंगीकार बी संभवै है ॥ १३ ॥

दोहा—आन भिन्न नहिं तोयतैं, बुदबुद फेन तरंग ॥ याप्रकार संसार यह, सुद्ध स्वरूप अभंग ॥ १४ ॥

टीका:—बुदबुदे फेन लहरी यह जलतैं भिन्न सत्य नहीं, तैसैं यह संसार बी सुद्धस्वरूप अधिष्ठान आत्मातैं भिन्नसत्तावाला नहीं: काहेतैं अध्यस्तकी सत्ता अधिष्ठानतैं भिन्न होवै नहीं, यह नियम है ॥ १४ ॥

(७४) ननु अधिष्ठानतैं अध्यस्तकी भिन्न सत्ता न होवे तो, देहादि अध्यस्त पदार्थोंमैं गमनागमनादि व्यवहार न हुवा चाहिये ? यह आशंकाकर कहे हैं:—

दोहा—पूरन आतममैं जगत, कंचन

मुहर प्रकार ॥ अद्वय अमल अनूप अ-ज, मुद्रा नाम असार ॥ १५ ॥

टीकाः—यद्यपि पूर्णात्मासैं जगत् अनन्य-रूप बी है तथापि जैसैं कंचनमैं अनन्यरूप मोह-रतैं संख्या परिणाम त्याग आदानादि व्यवहारकी सिद्धि होवै है तैसैं आत्मासैं अनन्यरूप देहादि सर्व पदार्थोंमैं गमनागमन, त्याग, आदानादि व्यवहारकी सिद्धि होवै है। अन्य स्पष्ट॥ १५ ॥

ननु अधिष्ठानसैं अनन्यरूप देहादि पदार्थोंसैं व्यवहार सिद्धि होवै तो अधिष्ठान विकारी हुवा चाहिये? सो शंका बनै नहींः— काहेतैं शुद्ध ब्रह्मरूप अधिष्ठानसैं देहादिकोंका संबंध नहीं, यह कहे हैंः—

दोहा—काष्ठमैं रहिटा भयो, रहिटामैं भयु फेर ॥ पऱ्यो तूल ताफेरमैं, भयो सूतको ढेर ॥ १६ ॥

वसन भयो तासूतमैं, पूतरि वसन

मझार ॥ आपसमें पूतरि सबै, करत परस्पर रार ॥ १७ ॥

काष्ठको अरु रारको, कहो कहां संबंध ॥ तन विकार यों ब्रह्ममें, कल्पै प्रानी अंध ॥ १८ ॥

टीकाः—तीन दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह हैः—जैसें काष्ठका औ वस्त्रमैं पुतलियोंके युद्धका परस्पर कछु संबंध नहीं; तैसें काष्ठस्थानापन्न शुद्ध ब्रह्ममें, काष्ठमें चरखेकी न्याई कल्पित माया औ तामें कार्यकी अभिमुखतासें तमोप्रधानतारूप फेर औ तामैं तूलस्थानी पंच आकाशादि सूक्ष्म भूत, तिनतें सूतस्थानी पंच स्थूल भूत, तिनमें ताणे पेटे स्थानी पचीस प्रकृति, तिनतें चतुर्दश लोकरूप वस्त्र तामैं पुतलियां स्थानी देव मनुष्यादि चार खाणीमैं होणेवाले शरीर, तिन शरीरोंके जन्मादि विकार असंग ब्रह्ममैं संभवै नहीं; जे कहो अ-

ज्ञानी तामैं कल्पना करै हैं ? तहां सुनोः— जैसैं सूर्यमैं उल्लूकर कल्पे अंधकारसैं सूर्यकी क्षिति नहीं; तैसैं अज्ञोंकर कल्पित विकारोंसैं ब्रह्मकी शुद्धता बिगरे नहीं ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

(७५) ननु जगत् हैही नहीं तो अधिष्ठान ज्ञानतैं निवृत्त क्यूं होवै है ? तहां सुनोः—

दोहाः—ब्रह्म रतन निर्मोल निज, तामैं क्रांति अनंत ॥ है नहीं कहत न बनै ऐसो जग दरसंत ॥ १९ ॥

टीकाः—जैसैं अमोलिक जो रत्नमणि, तामैं जो अनंत क्रांति प्रतीत होवै हैं; सो ता रत्नमणितैं भिन्न हैही नहीं तो ! तिनकी निवृत्ति कहना कैसे बनै । तैसैं ब्रह्ममैं जगत् हैही नहीं तो! ताकी निवृत्ति कैसे कहैं । जे कहो वेदांतशास्त्रमैं तत्त्वज्ञानसैं जगत्की निवृत्ति कही है ? सो नित्य निवृत्तकी निवृत्ति कही है । जैसैं रज्जुमैं सर्प-

नित्य निवृत्त है, तथापि ताके ज्ञानसैं नित्य निवृत्त सर्पकी निवृत्ति होवै है ॥ १९ ॥

पूर्वकहे अर्थकूं अन्य दृष्टांतकर दृढ करै हैं:—

दोहा—कहि अनाथ कासों कहों, आद्य मध्य अरु अंत ॥ ज्युं रविमें नहीं पाइये, निसि वासरको तंत ॥ २० ॥

टीका:—स्वामी अनाथजी कहे हैं—अधिष्ठान चेतनमें जगत् स्वरूपसैं है नहीं तो, ताके उत्पत्ति औ स्थिति औ नाश कैसे कहैं। जैसें सूर्यमें रात्रि औ दिनका स्वरूप नहीं पाईता तो. तिनकी उत्पत्ति आदिक कैसैं बनैं ॥ २० ॥

दोहा—षष्ठम जगत असत कहत, भयोसु अंतर ध्यान ॥ सहविलास अज्ञान हत, नष्ट होत जिम ज्ञान ॥ २१ ॥

इति श्रीविचारमालायां जगन्मिथ्यात्ववर्णनं नाम. षष्ठो विश्रामः समाप्तः ॥ ६ ॥

अथ शिष्यअनुभववर्णनं नाम
सप्तम विश्रामप्रारंभः ॥ ७ ॥

(७६) अब सप्तम विश्राममें गुरुके प्रति- नमस्कार करके शिष्य, गुरुकृत उपकारकूं सूचन करता हुवा, गुरुद्वारा ज्ञात अर्थकूं प्रगट करै हैः—

शिष्य उवाच ।

दोहा—वारंवार प्रनाम मम, श्रीगुरु दीन दयाल ॥ जगत भ्रम बहु नास्यो सुनि तव वचन रसाल ॥ १ ॥

टीकाः—हे दयालो श्रीगुरो! करुणारसके सहित आपके वचनकूं श्रवण करकै, जगत्‌रूप भ्रम मेरा निवृत्त भया है, तातैं आपके प्रति वारंवार मेरा नमस्कार है। ननु गुरुद्वारा अमोलक तत्त्वज्ञानकूं पाइकर कोइ अपूर्व पदार्थ भेट धऱ्या चाहिये, केवल नमस्कार उचित नहीं ? सो शंका बनै नहींः— काहेतैं या प्रपंचमें दो पदार्थ हैं, एक अनात्म पदार्थ

है, अपर आत्म पदार्थ है। तिनमैं अनात्म पदार्थ असत् जड दुःखरूप होनेतैं अति तुच्छ है, देने योग्य नहीं, अपर जो आत्मपदार्थ है, सो गुरुके प्रसादतैं प्राप्त भया है, तामैं प्रदानादिक्रियाके अभावतैं बी दिया जावै नहीं। यातैं नमस्कारहि बनै है १

पुनः गुरुकृत उपकारकूं शिष्य प्रगट करे हैः—

दोहा—भो भगवन् तुम मयातैं, भयो विगत संदेह ॥ सुद्ध स्वरूप लह्या भले, बिसर्‍यो देह अदेह ॥ २॥

टीकाः—हे भगवन्! आपके प्रसादतैं प्रमाण प्रमेयगत संदेहतैं रहित, सर्व विकारशून्य, चैतन्य, आनंदरूप, आत्माकूं भली प्रकार मैंनैं जान्या है। जो पूर्व विस्मरण भयाथा। अब देहमैं स्थित हुवाबी, देह संबंधतैं रहित हूं; जैसैं मथनकर दधिसैं पृथक् कीया नवनीत, तक्रमैं स्थित हुवा बी तासैं भिन्न रहे है ॥ २ ॥

(७७) अब शिष्य, अपना अनुभव प्रगट करे हैं:—

दोहा— अज्ञ तज्ञ नहीं सुभासुभ, नहिं ईश्वर नाहिं जीव ॥ सत्त जूठ मोमैं नहीं, अमल समल त्रिय पीव ॥ ३ ॥

टीका:—हे भगवन् ! ना मैं अज्ञानी हूं, काहेतें अज्ञान जाकूं होवै सो अज्ञ कहिये है औ ज्ञान जाकूं होवै सो ज्ञानी कहिये है। सो अज्ञानादि सप्त अवस्था आभासकी हैं, सो चिदाभासरूप जीव मैं नहीं, यातैं विधिनिषेध बी मुझपर नहीं। जीवत्वके अभावतैं मायामैं आभासरूप ईश्वर बी मुझपर नहीं, काहेतें सत्स्वरूप मुझमैं मिथ्या पदार्थ कैसै बनै ! शुद्ध अंतःकरण जिज्ञासु औ मलिन अंतःकरणरूप विषयी बी मैं नहीं। औ स्त्री पुरुष भाव बी मुझमैं नहीं, स्थूल शरीरका धर्म होणेतैं ॥ ३ ॥

पुनः स्थूलशरीरनिष्ठ धर्मोंका आत्मामैं अभाव दिखावै हैः—

दोहा—आश्रम बरन न देव नर, गुरु सिख धर्म न पाप ॥ पूरन आत्मा एक रस, नहिं घट बढ माप अमाप ॥ ४ ॥

टीकाः—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, औ संन्यास; ए चतुर आश्रम औ ब्राह्मणादि चार वर्ण, देवभाव औ मानुषभाव औ गुरुशिष्यभाव औ पुण्यपापरूप क्रिया, ए समग्र स्थूल शरीरका धर्म होणेतैं मुजमैं नहीं; काहेतैं मैं पूर्णात्मा औ अविकारी हूं, वृद्धि औ क्षयसैं रहित हूं औ ह्रस्वदीर्घ भावतैं बी रहित हूं। यही ध्यानदीपमैं कहा हैः— " वर्णाश्रमादि धर्म, देहविषै मायाकर कल्पित हैं; बोधरूप आत्माके नहीं, यह विद्वानका निश्चय है " ॥ ४ ॥

अब सूक्ष्मशरीरादि प्रपंचका आत्मामैं अभाव दिखावै हैः—

दोहा— मन बुद्धि इंद्रिय प्राण नहिं पंचभूत हूं नाहिं ॥ ज्ञाता ज्ञान न ज्ञेय कछु, नहिं सबहूं सब मांहिं ॥ ५ ॥

टीकाः—मनआदि सप्तदश अवयवरूप लिंग शरीर औ आकाशादि पंचभूत औ साभास अंतःकरणरूप ज्ञाता औ अंतःकरणका परिणाम साभास वृत्तिरूप ज्ञान औ घटादि विषयरूप ज्ञेय; ए संपूर्ण मेरे आत्मामैं वास्तव नहीं औ मैं सर्वमैं स्थित हूं। सो गीतामैं कहा हैः— " योगकर जीत्या है मंन जिसनैं, सो महात्मा, सर्व भूतोंमैं आपणे आत्माकूं स्थित देखता है औ सर्व भूतोंकूं आपणे आत्मामैं अभिन्न देखता है ॥ ५ ॥

सोरठा—मैं चैतन्य स्वरूप, इंद्रजालवत् जगत यह ॥ मैं तूं कथा अनूप, यह वह कहत नो संभवै ॥ ६ ॥

टीकाः—जातैं मैं चैतन्य आत्मा हूं औ यहै

जगत् इंद्रजालकी न्याई मिथ्या है, तातैं मैं पंडित हूं तूं मूर्ख है, यह हमारा शत्रु है, वै मित्र है, यह जो उपमातैं शून्य जगतसंबंधी कथा है, सो मेरे आत्मामैं कैसे बनै। यह जगत् इंद्रजालकी न्याई मिथ्या, यह तृप्तिदीपमैं कहा हैः—"यह द्वैत अचिंत्यरचनारूप होनेतैं मिथ्या है" ॥ ६ ॥

पुनः आत्मामैं देहादि पदार्थोंका अभाव कहे हैः—

दोहा—देही देह न हौ कछु, मुक्त बद्ध नहिं होय ॥ यतीन विषयी तप अतप, ना हौं एक न दोय ॥ ७ ॥

पूर्व पश्चम ऊर्ध्व अध, उत्तर दच्छिन नाहिं ॥ लघु दीर्घ न्यारो मिल्यो, नहिं बाहिर नहिं मांहिं ॥ ८ ॥

नहिं उत्पत्ति न वृद्ध लय, रूप

रंग रस भेद ॥ नहिं योगी भोगी नहिं, नहिं स्थीर नहिं षेद ॥ ९ ॥

टीकाः—तीन दोहोंका अर्थ स्पष्ट भाव यह हैः—यद्यपि देहादि पदार्थ सर्वकूं आपणे आत्मामैं प्रतीत होवै हैं तथापि उत्तम भूमिकामें आरूढविद्वानकूं आपणे आत्मामैं प्रतीत होवै नहीं ॥७॥ ८॥९॥

(७८) ननु एकहीं आत्मामैं विद्वानतैं भिन्न अन्योंकूं देहादि प्रतीत होवै है औ विद्वानकूं होवै नहीं यह कथन बनै नहीं ? तहां सुनोः—

दोहा- मलिन नयनकरि देखिये, सब कछु सबहि भाय ॥ अमल दृष्टि जब रवि लह्यो, तब रविहिं दरसाय १०

टीकाः—जैसैं जलादि उपाधि दृष्टिकर देखियें तब प्रतिबिंबताकर आदित्यमैं अनेकता औ चंचलता आदि सर्व विकार प्रतीत होवै हैं जब उपाधिदृष्टिकूं त्यागके सूर्यकी ओर देख्या तब अद्वितीय

प्रकाशरूप आदित्यहीं प्रतीत होवै है ॥ १० ॥

अब दृष्टांतकर कहे अर्थकूं दार्ष्टांतमैं जोडे हैं:—

दोहा—ऊच नीच निरगुन गुनी, रंक नाथ अरु भूप ॥ हूं घट बढ कासों कहूं, सब आनंदस्वरूप ॥ ११ ॥

टीका:—वर्णाश्रमकर यह ऊच है, तथा यह नीच है, यह दैवी संपत्तिसैं रहित पामर है, यह उत्तम जिज्ञासु है, यह धनके अभावतैं कंगाल है, यह ग्रामाधीश है औ यह राजा हमारेकर पूज्य है, ऐसी प्रतीति अज्ञानरूप उपाधिके बलकर अज्ञोंकूं होवै हैं; परंतु निरावरण आत्माके साक्षात्कारवाला जो मैं, सो पूर्व उक्त रीतिसैं किसके प्रति अधिक न्यून कहूं; जातैं सर्व मोकूं आनंदस्वरूप प्रतीत होवै हैं। सो कहा है हरितत्त्वमुक्तावलिमैं:—"परमात्माके ज्ञानसैं देह अभिमानके निवृत्त भये, जहां जहां विद्वान्का मन जावै, तहां तहां अद्वितीय ब्रह्महीं देखे है" ॥ ११ ॥

जगत्‌की प्रतीतिमैं मुख्य कारण अज्ञान कहा। अब अवांतर कारण मन कहे हैंः-

दोहा—मन उन्मेष जगत भयो, बिन उनमेष नसाय ॥ कहो जगत कित संभवै मनहीं जहां बिलाय ॥ १२ ॥

टीकाः—मनके फुरनेसैं जगत् प्रतीत होवै है औ मनके शांत भये जगत् प्रतीत होवै नहीं! जे कहो यह कैसे निश्चय होवै? तहां सुनोः- जाग्रत स्वप्नमैं मनके सद्भावतैं स्थूल सूक्ष्म जगत् प्रतीत होवै है औ सुषुप्तिमैं मनके बिलयतैं जगत् प्रतीत होवै नहीं; या अन्वयव्यतिरेक युक्तिसैं जगत् प्रतीतिमैं मनकी कारणता निश्चय होवै है। जहां ब्रह्मरूप ज्ञात अधिष्ठानमैं मनकाही अभाव निश्चय होवै है, तहां जगत्‌की प्रतीति कैसै संभवै ॥ १२ ॥

(७९) पूर्व कहे अर्थकूं पुनः प्रगट करे हैंः—

दोहा— नहीं कारन कार्य कछु, नहिं

न काल नहिं देश ॥ सिव स्वरूप पूरन अचल, सजाति विजातिं न लेस ॥ १३॥

टीका:—कल्याणस्वरूप, विभु, क्रियासैं रहित, मेरे आत्मामैं; कार्यकारणभाव नहीं, काहेतें मृत्तिकादिकोंकी न्याई कारण सावयवहीं होवै है, मैं निरवयव हूं, यातैं कारण नहीं ! औ घटादिकोंकी न्यांई जो कार्य होवै सो अनित्य होवै है, मैं नित्य हूं यातैं कार्य नहीं ! तथा सजातीय विजातीय स्वगत भेद ब्रह्मरूप आत्मामैं नहीं, काहेतें जैसैं पटका पटमें भेद सो सजातिकृत भेद है। तैसैं ब्रह्मके सदृश अन्य ब्रह्म होवै, तब सजातिकृत भेद ब्रह्ममैं होवै, ब्रह्मके सदृश अन्य ब्रह्म नहीं, यातै ब्रह्ममें सजातिकृत भेद नहीं। जैसैं पटमैं घटका भेद है सो विजातिकृत भेद है, तैसैं ब्रह्मके समान सत्तावाला कोऊ विजाति नहीं, यातैं ब्रह्ममैं विजातिकृत भेद नहीं। यद्यपि जीव ईश्वर, ब्रह्मसैं विजाति है;

तिनोंका भेद ब्रह्ममैं बनै है; तथापि जीव ईश्वर मायिक होणेतैं मिथ्या हैं, यातैं तिनोंका भेद ब्रह्ममैं नहीं। यह पंचदशीमैं कहा है। औ जैसैं पटमैं तंतुका भेद है सो स्वगत भेद है। तैसैं ब्रह्म सावयव नहीं, यातैं ब्रह्ममैं स्वगत भेद नहीं ॥ १३ ॥

(८०) ननु ता अधिष्ठानका स्वरूप कहा चाहिये ? तहां सुनोः-

दोहा-एकहुं कहत बनै नहीं, दोइ कहों किहि भाय॥ पूरनरूप विहायसी, घट बढ कह्यो न जाय ॥ १४ ॥

टीकाः-एकत्व संख्यावाचक एकशब्दकीहीं नाम जाति गुण क्रियाके अभावतैं ब्रह्ममैं प्रवृत्ति बनै नहीं, तौ द्वित्वसंख्यावाचक दो शब्दकी प्रवृत्ति कैसे बनै ! काहेतैं गुण क्रिया आदिकहीं शब्द प्रवृत्तिके निमित्त हैं, सो ब्रह्ममैं नहीं, यातैं जैसैं होवै तैसैं पूर्णरूपकूं त्यागकर अधिक न्यून भाव ब्रह्ममैं कह्या जावै नहीं ॥ १४ ॥

अब त्रिते शरीर औ अवस्थाके अभिमानी विश्वादिकोंका आत्मामैं निषेध करे हैं:—

दोहा-विश्व न तैजस प्राज्ञ कछु, नहि तुरिया ता मांहि ॥ स्वस्वरूप निज ज्ञानघन, मैं तूं विव तंहं नांहि ॥ १५ ॥

टीकाः— तुरीय नाम साक्षीका है । अन्य स्पष्ट ॥ १५ ॥

(८१) अब उक्त अर्थमैं शंकाकों कहे हैं:—

दोहा- जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिके, अभिमानी जे आहि ॥ जो सबको अनुभव करै ,सिवस्वरूप कहि ताहि ॥ १६ ॥

टीकाः—ननु पूर्व साक्षीका निषेध किया सो बनै नहीं, काहेतैं जाग्रत्का अभिमानी विश्व, स्वप्नका अभिमानी तैजस, सुषुप्तिका अभिमानी प्रा-

जाग्रतादि अवस्थाके सहित सर्वकूं जो प्रकाशै

ताकूं शास्त्रोंमैं शिवस्वरूप कह्या है; यातैं ताका निषेध बनै नहीं ॥ १६ ॥

(८२) अब वक्ष्यमाण दोहेकर या शंकाका समाधान करै हैं:-

दोहा- साधन साध्य कछु नहीं, नाथ सिद्ध नहिं कोय ॥ प्रमान प्रमाता को कहै, अनाथ प्रमेय न होय ॥ १७ ॥

टीका:- जाकर साध्यकी सिद्धि होई सो साधन औ साधनकर सिद्ध होयवे योग्य साध्य औ साधनकर साध्यकी प्राप्तिवाला सिद्ध औ प्रमाण प्रमाता प्रमेयरूप त्रिपुटी या साक्ष्यके अभावतैं साक्षी धर्मका निषेध कीया है; स्वरूपसें चैतन्यका निषेध नहीं कीया ॥ १७ ॥

पुनः वही अपवाद कहै हैं:-

दोहा- सास्ता सास्त्र सु को नहीं, नहिं भिच्छुक नहिं दान ॥ देस न काल

न वस्तु गुन, वादी वाद न हान ॥१८॥ विधिनिषेध नहिं थप अथप, नहिं प्रभु नाहिं को दास ॥ केवल सुद्ध स्वरूप हों, पूरन सुतह प्रकास ॥ १९ ॥

सोरठा– ध्याता ध्यान न ध्येय, मम निज सुद्ध स्वरूपमैं ॥ उपादेय नहिं हेय, सर्वरूप सबतें परे ॥ २० ॥

टीकाः—अज्ञानके अभावतैं मुझपर शिक्षा करणेवाला औ शास्त्र नहीं औ जिज्ञासाके अभावतैं मैं भिक्षुभी नहीं औ उदारताके अभावतैं दानी नहीं औ हृदय कंठ नेत्ररूप देश, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप काल, स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर वस्तु, औ सत्वादि तीन गुणबी मुझमैं नहीं। वाद करनेवाला औ वितंडा जलपा अध्यात्मादि वाद औ ताकर होवै जो जय पराजय, सोबी नहीं ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

(८३) दोहा—कह्यो शिष्य अनुभव सबै, रह्यो मौन गहि सोय ॥ बोले दास अना-थ कहि सुगुरु शिष्य तन जोय ॥ २१ ॥

टीकाः— स्वामी अनाथदासजी कहे हैंः— शिष्य गुरुद्वारा अनुभव करे समग्र अर्थकों कह-कर सो मौनकूं अंगिकार कर स्थित भया । तब गुरु, शिष्यकी ओर देखकर शिष्यकी परीक्षा अर्थ, वक्ष्यमाण रीतिसैं बोलते भये ॥ २१ ॥

दोहा— स्वतें शिष्य अनुभव भयो, इति अष्टम प्रति आख ॥ गुरु यामैं सं-का करैं, उत्तर तिन प्रति भाष ॥ २२ ॥

इति श्रीविचारमालायां शिष्यअनुभववर्णनं नाम सप्तमो विश्रामः समाप्तः ॥ ७ ॥

अथ आत्मवान् स्थितिवर्णनं नाम
अष्टमविश्रामप्रारंभः ॥ ८ ॥

(८४.) अब अष्टम विश्राममैं कथन करना जो अर्थ, ताकी सूचक ग्रंथकारकी उक्ति आदिमैं लिखैं हैं:—

दोहा— अनुभव अमृत शिष्यके, उदय भयो चित चैन ॥ लैन परीच्छाकों कहै, गुरु करुणा रस बैन ॥ १ ॥

टीका:— अद्वितीय निश्चयरूप अमृतके उदय भयेसैं शिष्यके हृदयमैं आनंदका आविर्भाव भया है वा नहीं, या संदेहकी निवृत्तिरूप परीक्षाके अर्थ गुरु, करुणारससैं मिले वक्ष्यमाण वचन कहे हैं। ननु महावाक्यरूप प्रमाणजन्य ज्ञानके उदय भये आनंदका आविर्भाव अवश्य होवै है, तामैं संदेह संभवै नहीं ? तहां सुनो:— जैसैं नवीन कंटकका आकार यथावत् प्रतीतबी होवै है, तौभी कोमल-

तारूप प्रतिबंधके सद्भावतैं ता कंटकसैं वेधनादिरू-
प कार्य होवै नहीं। तैसैं एकवार महावाक्यके श्रव-
णकर उदय भये तत्त्वज्ञानसैं, संशयादिरूप प्रति-
बंधके सद्भावतैं आनंदाविर्भावरूप कार्यकी सिद्धि
होवै नहीं। यातैं तामैं संदेह संभवै है:—

अब परीक्षाका प्रकार कहे हैं:—

दोहा— परछा निज विज्ञानकी, लेत खंड व्यवहार ॥ इस्थिति आतमवानकी, उपदेसत निरधार ॥ २ ॥

टीका:— विद्वानकी प्रवृत्तिरूप व्यवहारके
निषेधद्वारा गुरु, शिष्यके ज्ञानके परीक्षा करे हैं:—
काहेतैं भिक्षा भोजन औ कौपीन आच्छादनके ग्र-
हणतैं अधिक प्रवृत्ति विद्वानकी भोग्योमैं होवै न-
हीं; यह पक्ष बहुत ग्रंथोंमैं लिख्या है। या पक्षकूं
आश्रय करके गुरु, ज्ञानवान्‌की उदासीनतारूप
स्थितिकूं अज्ञ औ मुमुक्षु औ बद्धज्ञानीतैं भिन्न-
कर उपदेश करै हैं ॥ २ ॥

(८५) श्रीगुरु, वक्ष्यमाण वचन कहे हैं:-

श्रीगुरुरुवाच ।

दोहा- जो कहि करहिं कहा विषय, भयो ज्ञान उद्योत ॥ विषय संग मति भंग व्है, ज्ञान सिथिलता होत ॥ ३ ॥

टीका:-हे शिष्य ! जेकर तूं ऐसे कहे, एकवार महावाक्यके श्रवणतें ज्ञानके उदय भये पुनः विषयोंमैं प्रवृत्तिसैं मेरी क्या हानि है, यह तेरा कथन संभवै नहीं; काहेतें विषयोंके संबंधसैं तत्त्वविचारवती बुद्धि नष्ट होवै है औ विचारके अभावतैं ज्ञातवस्तुमैं संदेहरूप शिथिलता ज्ञानमैं होवै है ॥३॥

अब योग्यताके अभावतैं विद्वानकी प्रवृत्तिका अभाव दिखावै हैं:-

दोहा- जान्यो अविनाशी अजर, अद्वय रूप अपार ॥ जग आसक्ति न संभवै, सुन शिष्य सत्य विचार ॥ ४ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! महावाक्यके श्रवण कर नित्य नवीन औ नाशतैं रहित प्रत्यक् आत्माकूं जब प्रच्छेदतैं रहित अद्वय आनंदरूप जान्या, तब भोगरूप जगत्मैं आसक्ति संभवै नहीं । जैसैं चक्रवर्ती राजाको ग्रामाध्यक्षके भोगकी इच्छा बनै नहीं तैसैं । जे कहे चित्त निरालंब रहे नहीं; तो सत्य वस्तुके चिंतनरूप विचारकूं निरंतर कर ॥ ४ ॥

अब व्यतिरेकमुखसैं ज्ञानवान्की प्रवृत्तिका अभाव कहे हैंः—

दोहा– सुद्ध स्वरूप लह्यो नहीं, उद्यो न निर्मल ज्ञान ॥ मलिन विषय व्यवहार रति, तबलग होत अजान ॥ ५ ॥

टीकाः—तबलगहीं अज्ञ पुरुषकी अविद्याके कार्य शब्दादि विषयोंमैं औ कायिक वाचिक मानसिक क्रियामैं प्रीति होवै है, जबलग संशय विप-

र्यसैं रहित तत्त्वज्ञानकर अपने आत्माकूं ब्रह्मरूप नहीं जानै है। जैसैं खल खाणेमैं पुरुषकी रुचि तबलग होवै है, जबलग यथारुचि पायसादि उत्तम भोजनोंकी प्राप्ति नहीं होवै है ॥ ५ ॥

पुनः विधिमुखकर प्रवृत्तिका अभाव कहे हैंः—

दोहा— जो पूरन आतम लह्यो, तौ क्यौं रति व्यवहार ॥ सोऽहं जान सुहोत क्यौं, जग जन दीन प्रकार ॥ ६ ॥

टीकाः—हे शिष्य ! जो तूं ऐसे कहे, मैं आत्माकूं पूर्ण ब्रह्मरूप जान्या है, मुझपर विधिनिषेध कहां है; तौ प्रवृत्तिरूप व्यवहारमैंभी प्रीति बनैं नहीं, काहेतें जाके आनंदके लेशतें सारा विश्व आनंदित है सो आनंदस्वरूप ब्रह्म मैं हूं ऐसें जिसने जान्या है सो महात्मा संसारी जीवोंकी न्यांई दीन क्यूं होवै है, अर्थात् नहीं होवे है ॥ ६ ॥

ऐसें ज्ञानके साधनोंपर ग्रंथोंका तात्पर्य क-

हकर, अब शिष्यके प्रति विषयोंतें उपराम करे हैं:—

दोहा— मुक्ति विषय वैरागजो, बंधन विषय स्नेह ॥ यह सब ग्रंथनको मतो, मन मानै सु करेह ॥ ७ ॥

टीका:—हे शिष्य ! विषयोंमैं जो वैराग है सो मोक्षका साधन होनेतैं मोक्षहीं है औ विषयोंमैं जो स्नेह है सो बंधका हेतु होनेतैं बंधन है। सो कहा है ग्रंथांतरमैं:— "बद्धो हि को यो विषयानुरागी को वा विमुक्तो विषये विरक्तः" "विषयोंमैं अनुराग बंध है औ विषयोंमैं वैराग्य मोक्ष है" औ "रागो लिंगमबोधस्य चित्तव्यायामभूमिषु" "चित्तके विचरनेकीयां भूमियां जो शब्दादिक विषय, तिनमैं जो राग है सो अज्ञानका चिन्ह है"। यातैंबी ज्ञानवान्‌की प्रवृत्तिका अभावहीं निश्चय होवै है। सर्व ग्रंथोंका या अर्थमैंही तात्पर्य है; इनमैसें जामैं तेरी रुचि होवै सो कर । यद्य-

पि पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ, ज्ञानके मुख्य साधन वैराग्य-की प्रधानताके कहनेतैं मुमुक्षुपर हैं औ शिष्य अद्वैत निष्ठाकूं प्राप्त भया है, यातैं ताप्रति यह कथन संभवै नहीं; तथापि ‘ वादी भद्रं न पश्यति. ‘ वादी पुरुष कल्याणकूं नहीं देखे है’ । या न्या-यकर, गुरुने शिष्यके सिद्धांतमैं आशंका करी है; यातैं यह कथन संभवै है ॥ ७ ॥

अब गुरुकी दयालुताकूं प्रगट करते हुए ग्रं-थकार कहे हैंः-

दोहा- कृपा करत सिषपर घनी, गुरु सरनाई राइ ॥ इस्थिति आतमवा-नकी, कहि पुनपुन दरसाई ॥ ८ ॥

टीकाः-जातैं गुरु शरणागत पालकोंमैं मु-ख्य हैं, तातैं शिष्यपरबी बहुतसी कृपा करते हुए ज्ञानवानकी उदासीनतारूप स्थितिकूं दृष्टांतोंसैं वारंवार कहे हैं ॥ ८ ॥

अब अधिष्ठानतैं भिन्न जगतमैं सत्य बुद्धिके अभावतैंबी विद्वानकी प्रवृत्ति संभवै नहीं,यह कहेहैं:—

दोहा—जैसैं भूंजे अन्नमैं, उद्भवता भई छीन ॥ तैसैं आतमवान्‌की, भई जगत मति लीन ॥ ९ ॥

टीका:—जैसैं केवल वह्निकर पक्क अन्नमैं अंकुर उत्पन्न करनेका सामर्थ्य रहे नहीं, तैसैं अधिष्ठानके ज्ञानकर ज्ञानवान्‌की जगतमैं सत्यत्व बुद्धिके अभावतैं प्रवृत्ति संभवै नहीं ॥ ९ ॥

ननु ज्ञानवानोंकी निष्ठा भिन्न होनेतैं काहूकी प्रवृत्तिमैं निष्ठा होवै है, काहूकी निवृत्तिमैं निष्ठा होवै है, यातैं केवल निवृत्ति कथन ज्ञानवान्‌की संभवै नहीं, यह कहै हैं:—

दोहा—अनाथ सुज्ञानी कोटिको, निश्चय निजमत एक ॥ एक अज्ञानीके हिये, वरतत मते अनेक ॥ १० ॥

टीकाः—अनंत ज्ञानीयोंका स्वरूपमैं निष्ठा-रूप मत निश्चयकर एकहीं है, अरु जे कहो निष्ठारूप मत कवन है ? तहां सुनोः— श्लोक " किं करोमि क्व गच्छामि किं गृण्हामि त्यजामि किं ॥ आत्मना पूरितं सर्वं महाकल्पांबुना यथा " "जैसैं महाकल्पमें जलकर सर्व स्थान पूर्ण होवैं हैं, तैसैं मेरे आत्माकर सर्व पूर्ण हैं; तातैं मैं क्या करौं, कहां जावों, क्या ग्रहण करों, औ किसका त्याग करों "। सर्व विद्वानोंका यही निश्चय है औ एक अज्ञानीके हृदेमैं अनेक निश्चय होवै हैं सो कहे जावैं नहीं, काहेतैं वसिष्ठजीनें रामचंद्रके प्रति कहा हैः—" हे राम ! मुझसैं आदि लेके सर्व ज्ञानवानोंका अद्वितीय निश्चय है औ अज्ञानीयोंके निश्चयकूं हम नहीं जानते " ॥ १० ॥

ननु स्वकृत ज्ञानवान्की प्रवृत्ति मत होवो, परंतु परकृत प्रवृत्ति संभवै है ? यह आशंकाकर उत्तर कहे हैंः—

दोहा—सेवा बहुत प्रकार पुन, अंग त्रास करै कोय ॥ ज्ञानी आपनपो लहै, तृप्त कुप्त नहिं होय ॥ ११ ॥

टीका:—ननु स्वकृत विद्वान्की प्रवृत्ति मत होवो, परंतु कोऊ श्रद्धालु पुरुष वस्त्र भोजनादिकोंकर विद्वान्के शरीरकी सेवा करे, पुनः कोऊ निर्दय पुरुष अपने स्वभावके वशतैं यष्टिकादिकोंके प्रहारतैं विद्वान्के शरीरमें पीडा करे, तिनके प्रति वर शापके अर्थ प्रवृत्ति संभवे है? सो शंका बनै नहीं:—काहेतैं जैसैं पुरुषका हस्तरूप अवयव, मुखरूप अवयवकी पालना करै है, औ दंतरूप अवयव जिव्हारूप अवयवकूं काटे, तब पुरुष सर्वकूं अपने अवयव जानके क्रोधादि करे नहीं। तैसैं ज्ञानवान्बी सेवा करनेवालेकूं औ पीडा कर्त्ताकूं अपने अवयव जाने है; यातैं तृप्त कुपित होवै नहीं। अथवा आपनपो लहै, याका यह अर्थ

है:—ज्ञानवान् सुख दुःख अपने पूर्वकृतका फल जाने है, यातैं तृप्त कुपित होवै नहीं। सो कहा है अध्यात्ममैं:—अपणे पूर्वले इकत्र करे कर्महीं सुख दुःखके कारन हैं॥ ११॥

ननु अध्यात्मादि तीन तापोंकी निवृत्ति अर्थ विद्वान्‌की प्रवृत्ति संभवै है? तहां सुनो:—

दोहा—सांतरूप तिनकों जगत, जे उर सांत महंत॥ त्रिविध ताप निजउर जरत, ते जग जरत लहंत॥ १२॥

टीका:—अज्ञानके सद्भावतैं अध्यात्मादि तीन तापोंकर जिनके चित्त तपायमान हैं ते अज्ञ पुरुष सर्व जगत्‌कूं तपायमान देखे हैं, तिनकी हीं तापोंकी निवृत्ति अर्थ प्रवृत्ति संभवे है, औ जे महान्‌भाव अज्ञान्‌की निवृत्तिद्वारा सर्व इच्छाऊंकी निवृत्तितैं शांत चित्त हैं तिन विद्वानोंको सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत होवै है, यातैं तापोंकी निवृत्ति

अर्थ विद्वानकी प्रवृत्ति संभवै नहीं। सो तृप्तिदीपमें कहा हैः–जब यह विद्वान् आपणे आत्माकूं इस रीतिसैं जानता है 'यह प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्म मैं हुं तब किसकी इच्छा करता हुवा औ किसकी कामना अर्थ शरीरकूं आश्रय करके तपायमान होवै है" ॥ १२ ॥

ननु अंतरसुखकी उपलब्धिसैं विद्वान्कूं सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत होवै, तौ विषयी औ उपासककूंबी सुखकी उपलब्धिसैं सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत हुवा चाहिये ? तहां सुनोः–

दोहा–विषयानंद संसार है, भजनानंद हरिदास ॥ ब्रह्मानंद जीवन्मुक्त, भई वासना नास ॥ १३ ॥

टीकाः–विषयी पुरुषोंकों स्रक् चंदन वनिता आदि विषयोंकी समीपतासैं आनंद होवै है, यातैं क्षण एक है औ उपासक पुरुषकूं बी ध्येया-

कार वृत्तिरूप भजनद्वारा आनंदका लाभ होवै है, सोबी प्रयत्न साध्य होनेतैं सदा रहे नहीं, यातें तिन दोनोंकूं सुख अभाव कालमैं जगत् सुखरूप प्रतीत होवै नहीं औ जीवन्मुक्त विद्वान्कों सर्व वासनाके अभावतैं ब्रह्मानंद निरावरण प्रतीत होवै है, आनंदस्वरूप ब्रह्मकूं सर्व रूप होनेतैं विद्वान्कूं सर्व जगत् सुखरूप प्रतीत होवै है ॥ १३ ॥

पूर्व कहे अर्थकों पुनः प्रपंचन करे हैंः—

दोहा—मुक्त्यादिक इच्छा नहीं, निस्पृह परम पुमान ॥ आत्मसुख नित तृप्त जे, तिन समान नहीं आन ॥ १४ ॥

टीकाः—जे महात्मा मुक्तिकी इच्छातैं रहित हैं, आदि शब्दकर ज्ञान औ ज्ञानके साधन श्रवणादिकोंकी इच्छातैं रहित हैं, औ निस्पृह कहिये यालोक परलोकके भोगोंकी इच्छातैं रहित हैं, जातैं आत्मानंदकर नित्य तृप्त हैं; ते सर्वोत्कृष्ट पु-

रूप हैं। यातैं आन जे विषयी औ उपासक हैं ते तिनके तुल्य नहीं ॥ १४ ॥

पूर्व कही जो विद्वान्‌की निस्पृहता, तामें हेतु कहे हैं:—

दोहा—दृष्ट पदारथको भयो, जिनके सहज अभाव ॥ कहा गहै त्यागै कहा, छूट्यो चाव अचाव ॥ १५ ॥

टीका:—जिन महात्मोंकी अधिष्ठानके ज्ञान कर दृश्य पदार्थोंके अभाव निश्चयतैं ग्रहण त्याग की इच्छा निवृत्त भयी है, ते विद्वान् किसका ग्रहण करैं औ किसका त्याग करैं ॥ १५ ॥

ननु बाधितानुवृत्तिकर विद्वान्‌कों पदार्थोंकी प्रतीति न होवै, तो जीवन उपयोगी भिच्छा अशनादि व्यवहारकी सिद्धि होवै नहीं; बाधित पदार्थोंकी प्रतीति स्वीकार होवै, तो प्रतीतिके विष

पदार्थोंमैं इच्छा अवश्य होवैगी । ताका अभाव संभवै नहीं ? या शंकाके उत्तरका:-

दोहा-जैसैं दिनकरके उदे, दीपक द्युति दुरि जात ॥ तैसैं ब्रह्मानंदमें, आनंद सबैं बिलात ॥ १६ ॥

टीका:-जैसें आदित्यके उदय भये, कोटि दीपकोंका प्रकाश आदित्य प्रकाशके अवांतर वर्ते है। तैसैं विषयानंदादि समग्र आनंद, विद्वानकूं ब्रह्मानंदके अवांतर प्रतीत होवैहै, या अभिप्रायतें ब्रह्म भिन्न पदार्थोंमैं इच्छाका अभाव कहा है। बाधित अनुवृत्तिकर पदार्थोंकी अप्रतीतिसैं नहीं ॥१६॥

ननु परमत निश्चय करणे अर्थ, न्यायादि शास्त्रोंमैं विद्वान्‌की प्रवृत्ति संभवै है ? तहां सुनो:-

दोहा-गरुड तहां वाहन सबैं, रस सब अमी समीप ॥ ज्ञानदिवाकरकै उदै, सब मत व्है गये दीप ॥ १७ ॥

टीकाः—जातैं गरुडका वेग अश्वादि सर्व वाहनोंसैं अधिक है, तातैं सर्व वाहन गरुडके अवांतर हैं औ चंद्रद्वारा अमृतके अंशकी प्राप्तितैं औषधियोंमैं मधुरादि रस होवै हैं, यातैं सर्व रस अमृतके अंतर्भूत हैं, (आदित्य औ दीपकका दृष्टांत पूर्व खोल्या है)। तैसैं न्यायादि सर्व मतोंका पर्यवसान अद्वैत निश्चयरूप ज्ञानसैं इस रीतिसैं विद्वान्‌ने निश्चय कीया हैः— पूर्व मीमांसा यज्ञादि कर्मोंके उपदेशतैं अंतःकरणकी शुद्धिद्वारा ज्ञानका हेतु है औ सांख्यशास्त्र त्वंपदार्थके शोधनद्वारा ज्ञानमैं उपयोगी है औ न्याय वैशेषिक बुद्धिकी सूक्ष्मतासैं मननद्वारा ज्ञानमैं उपयोगी हैं औ चित्तकी एकाग्रताद्वारा पातंजल शास्त्र ज्ञानका हेतु है औ उत्तर मीमांसा तत्त्वज्ञानकी उत्पत्तिमैं साक्षात् हेतु है इस रीतिसैं साक्षात् वा परंपरासैं सर्व मतोंका पर्यवसान तत्त्वज्ञानमैं विद्वाननैं सारग्राही दृष्टिसैं निश्चय कीया है; यातैं ताकी ज्ञानसैं उत्तर कर्तव्य

बुद्धिकर किसी शास्त्रमैं प्रवृत्ति संभवै नहीं ॥ १७ ॥

(८६) अब प्रसंगकूं समाप्त करते हुये ग्रंथ-कार कहे हैंः—

दोहा—हेतु परिच्छाके सुगुरु, षंड्यो जगव्यवहार ॥ कहत शिष्य आनंद युत, वस प्रारब्ध आधार ॥ १८ ॥

टीकाः—ग्रंथकार उक्तिः—सुष्ठु गुरोनें शिष्यके निःसंदेह तत्त्वज्ञानकी परीक्षा अर्थ, विद्वानके भिक्षा आच्छादन ग्रहणतें अधिक व्यवहारका निषेध कीया; तब प्रसन्न मनवाला हुवा शिष्य, वक्ष्यमाण वचनोंसैं कहे हैः—प्रारब्धाधीन विद्वान्के शरीरकी स्थिति औ भोग्य होवै है, याका यह अभिप्राय हैः—विद्वान्पर वेदकी आज्ञा तो है नहीं, जातें विद्वा-न्के व्यवहारका नियम होवै, किंतु प्रारब्धकर्मके अनुसार विद्वान्का व्यवहार होवै है ॥ सो प्रारब्ध अनेकविध हैंः— किसी विद्वान्का अधिक प्रवृ-

त्तिका हेतु प्रारब्ध है, यथा जनक आदिकोंका, किसी विद्वान्का निवृत्तिका हेतु प्रारब्ध है, यथा वामदेव आदिकोंका, इस रीतिसैं विद्वान्के व्यवहारमैं नियम नहीं ॥ १८ ॥

(८७) आसक्तिपूर्वक क्रियाबंधनका हेतु होवै है सो ज्ञानीके है नहीं यातैं ज्ञानवान्की प्रवृत्ति स्वाभाविक होनेतैं बंधनका हेतु नहीं, या अर्थकों शिष्य कहे हैंः— शिष्य उवाच ।

दोहा— भगवन आतमवान जे, लीलावत करे भोग ॥ वस्तु बुद्धि कछु ना गहै, धीरजवान अरोग ॥ १९ ॥

टीकाः—हे भगवन्! जो ज्ञानवान् है सो पूर्वले अदृष्टजन्य स्वभावके वशतैं कर्तृत्व अभिमानतैं विंना भोगोंमैं प्रवृत्त होवै है औ चिद् जड ग्रंथिके अभावतैं सत्य बुद्धिकर प्रवृत्त होवै नहीं;

काहेतैं धैर्यादि गुण संयुक्त है औ अविद्यारूप रोगसैं रहित है ॥ १९ ॥

ननु मिथ्या बुद्धिसैं ज्ञानवान्‌की प्रवृत्तिबी अज्ञानीकी प्रवृत्तीकी न्यांई बंधनका हेतु है, यह शंका होवै है; ताका उत्तर कहो ? तहां सुनोः—

दोहा— अज्ञानी आसक्त मति, करै सुबंधन हेत ॥ ज्ञानीकै आसक्ति नहीं, तजै न कछु गहि लेत ॥ २० ॥

टीकाः—अज्ञानी सर्व व्यवहार कर्तृत्व अभिमानकर करे है, यातैं ताकों बंधनका कारण है औ ज्ञानवान्‌कों कर्तृत्व अभिमान है नहीं, यानैं स्वरूप दृष्टिसैं न किसीका ग्रहण करे है औ न त्याग करे है; यातैं ताकी प्रवृत्तिही संभवै नहीं तो बंधनकी शंका कैसै बनै ? ॥ २० ॥

(८८) ननु कर्तृत्व अभिमान ज्ञानीकूं काहेतैं नहीं ? या शंकाके होया विद्वान्‌की दृष्टिमें कर्ता

भोक्ता जीव नहीं, या अर्थकों दो दोहोंकर दिखावै हैः—

दोहा— हौं अंबोध अनंत गति, परस्यो चित्त समीर ॥ बहु कलोल तामैं उठैं, नाना रूप सरीर ॥ २१ ॥

चित्त वात भयो सांत अब, जीव लहरि भइ लीन ॥ केवल रूप अनंत हौं, रह्यौ सुभासुभ हीन ॥ २२ ॥

टीकाः—देशपरिच्छेदतैं रहित समुद्ररूप स्वमहिमामैं स्थित मेरे आत्मामैं, अघटन घटन पटीयसी मायाकर, चित्तरूप वायुके संबंधसैं, देव तिर्यक् मनुष्यादि शरीररूप बहुत लहरियां तामैं उत्पन्न भयी। याका यह अभिप्राय हैः— शरीरोंके अभिमानी चिदाभासरूप जीव उत्पन्न भये ! अब गुरुमुखात् विचारित महावाक्यतैं तत्त्वज्ञानकर, चित्तरूप वातकी निवृत्तितैं चिदाभास जीवरूप लहरि-

योंकी निवृत्ति कर, पूर्व उक्त देशपरिच्छेदरहित शुद्धात्मा स्वमहिमामैं स्थित हूं। इस रीतिसैं कर्त्ता भोक्ताके अभावतैं ज्ञानवानकी शुभाशुभमैं प्रवृत्ति होवै नहीं ॥ २१ ॥ २२ ॥

(८९) औ जे कहो विद्वान्‌की दृष्टिमैं कर्त्ता भोक्ताका अभाव काहेतैं है ? तहां सुनोः—

दोहा—इंद्रादिक इच्छा करैं, निश्चल पद सु अगाध ॥ तहां ज्ञानिकी स्थिति सदा, मैं तूं यह वह बाध ॥ २३ ॥

टीकाः—जा अक्रिय औ अगाध पदकी प्राप्तिकी इंद्रादिक देवताबी इच्छा करै हैं औ जामैं मैं गुरु हों, तूं शिष्य है, यह तुजकूं कर्तव्य है, यह याका फल है, इत्यादि प्रत्ययोंकाबी बाध है; तहां ज्ञानवानकी निरंतर स्थिति होणेतैं, विद्वान्‌कूं कर्त्ता कर्म क्रियारूप त्रिपुटी प्रतीत होवै नहीं ॥२३॥

पुनः ता चिद्वस्तुकेहीं विशेषण कहे हैंः—

दोहा— जाग्रत स्वप्न तहां नहीं, जहां सुषुप्ति मन लीन ॥ मैं तूं तहां न संभवै, आतम निश्चय कीन ॥ २४ ॥

टीकाः— जा पूर्व उक्त चिद्वस्तुमैं जाग्रत् स्वप्न अवस्थाका अभाव है औ जा सुषुप्ति अवस्थामैं मनका विलय होवै है ताकाबी अभाव है औ जामैं मैं तूं यह भावनाबी होवै नहीं, ताहि चिद्वस्तुकों विद्वाननें आपना आत्मा निश्चय किया है ॥ २४ ॥

(९०) ननु ज्ञानवान् अनेक तरांके व्यवहारकर्तें प्रतीत होवै हैं, यातैं तिनके फलकरभी बंधायमान होवैंगे ? तहां सुनोः—

दोहा—ज्ञानि करे अनेक कर्म, विधिवत जग व्यवहार ॥ लिंपै न धूमाकास ज्यों, जान्यो जगत असार ॥ २५॥

टीकाः—ज्ञानवान् यद्यपि देह इंद्रिय मनके

धर्म जानकर विधिपूर्वक अनेक यज्ञादि कर्म करे है, औ खान पान लेन देनादिक लौकिक व्यवहार करे है, तथापि जैसैं धूमादिकोंकर आकाश मलिन होवै नहीं, तैसें ज्ञानवान् कर्मोंके फलकर बंधायमान होवै नहीं काहेतैं जातैं सर्व जगत्कों मिथ्या जान्या हैं ॥ २५ ॥

(९१) अब योगी ज्ञानकी निष्ठा कहे हैं:—

दोहा—जाग्रत मांहि सुषुप्तिसी, मतवारेकी केल॥ करै चेष्टा बाल ज्यों, आत्मसुख रह्यो झेल ॥ २६ ॥

टीकाः—अष्टांग जोगके अभ्यासकर उपरतिकी दृढतातैं विद्वानकों जाग्रत् व्यवहारमें इष्टानिष्टकी विस्मृति सुषुप्तिके तुल्य होवै है। जे कहो इष्टानिष्टके ज्ञानविना विद्वान्का व्यवहार कैसें सिद्ध होवै है? तहां सुनोः—जैसै उन्मत्त पुरुष क्रीडा करै है औ बालक जैसें इष्टानिष्टके ज्ञानविना चेष्टा

करे है, तद्वत् विद्वानभी प्रवर्ते हैं। उन्मत्त, औ बालकतैं विद्वान्का भेद कहे हैं:—विद्वान् निरावरण आत्मानंदकूं अनुभव करे है॥ २६॥

(९२) अब विद्वानकूं इष्टानिष्ट पदार्थकी प्राप्तिसैं हर्षशोकका अभाव कहे हैं:—

सोरठा— स्वप्न राव भयो रंक, प्रान तजै तहं छुधा वस॥ जागै वही प्रयंक कह विस्मय कह हर्ष पुनि॥ २७॥

टीका:—जैसैं कोउ राजा, सेजामैं शयन करै तहां निद्रामैं ऐसा स्वप्न देखै, मैं कंगाल हों, अन्नके अलाभतैं क्षुधाकर मेरे प्राण जावै हैं तब अदृष्ट बलतैं जागकर देखे मैं राजा हों, सेजापर पड्या हों, तब सो राजा जैसैं राज औ कंगालताके लाभतैं हर्षशोककूं नहीं भजे है; तद्वत् विद्वानबी जान लेना॥ २७॥

(९३) अब प्रकरणकी समाप्ति करते हुये ग्रंथकार, शिष्यका सिद्धांत कहे हैं:—

दोहा—आस्तिक नास्तिक नहिं कछु, नहीं तहं एक न दोय ॥ लघु दीरघ नहिं अगुन गुन, चित्स्वरूप मम सोय ॥ २८ ॥

टीका:—अर्थ स्पष्ट ॥ २८ ॥

दोहा— अगह अगोचर एकरस, निरवचनी निरवान ॥ अनाथ नहीं को भूमिका, जा पर कथिये ज्ञान ॥ २९ ॥

टीका:—ग्रंथकार उक्ति शिष्य कहे हैं:—मेरा स्वरूप कर्म इंद्रियोंकर ग्रहण होवै नहीं, तथा ज्ञान इंद्रियोंका विषय नहीं, इसीतैं एकरस है औ किसी वचनका विषय नहीं औ जामैं सर्व दुखोंका अभाव है ऐसा है । औ किसी भूमिकाका क-

म होवै तिसमैं तो कथन भी संभवै, ज्ञानकी स-सभूमिकाकी कल्पना तामैं नहीं, यातैं तहां प्रश्न उत्तररूप कथन संभवै नहीं ॥ २९ ॥

(९४) अब शिष्यके सिद्धांतकों श्रवण करके गुरु शिष्यकी प्रशंसा करे हैंः— श्रीगुरुरुवाच ।

दोहा— धन धन सिष्य उदार मति, पायो मतो अनूप ॥ सुगुरु षोज लीनो भले, भयो सुसुद्ध स्वरूप ॥ ३० ॥

टीकाः— ग्रंथकार उक्तिः— सुष्टु गुरोनें शि-ष्यके सिद्धांतमैं शंका करके भली प्रकार निश्चय कीया जो शिष्यकी ब्रह्मरूपसैं स्थिति भइ है, तब गुरु कहे हैंः— हे शिष्य ! जातैं तें अनूप ब्रह्ममैं स्थिति पाइ है, तातैं तूं धन्य कहिये कृतकृत्य है, याहीतैं उदारबुद्धि है ॥ ३० ॥

(९५) अब समग्र ग्रंथकर, कहे समग्र अर्थ-कों संग्रहकर दो दोहोंसैं कहे हैंः—

दोहाः– सुनि विचार ठहराइ हो, विसर वाक्य थकि जाय ॥ अनाथ विवेकी जानि है, गायब बाजी पाय ॥ ३१॥

टीकाः– ग्रंथकार उक्तिः– विवेकी कहिये चतुष्टयसाधनसंपन्न अधिकारी, जब श्रवण करे औ मनन करे औ श्रवण करे अर्थमैं वृत्तिकी स्थितिरूप निदिध्यासन करे औ विसर वाक्य थकि जाय कहिये निदिध्यासनकी परिपाक अवस्थारूप समाधि करे; तब बाजी पाय कहिये जैसैं बाजीगर अपणी मायाकर छपनें होवै है, तैसैं गायब कहिये सविलास अज्ञानकर आच्छादित चैतन्यकूं जाने है ॥ ३१ ॥

(९६) दोहाः–यह विचारमाला सरस, बहुविध रच्यो विचार ॥ साधन सिद्ध प्रगट किये; अनाथ भले प्रकार ॥ ३२॥

टीकाः–यह तत्त्वका विचार, मालाके साहृ-

श्य मुमुक्षुकरि निरंतर करणीय है। अर्थ यह है:- जैसैं जपकर्ता पुरुषने निरंतर माळा फेरीती है, तैसैं मुमुक्षुनैं निरंतर तत्त्वका विचार करणा। याहीतैं सो विचार नानायुक्तियोंसैं कहा है। जो कहो, सो विचार कह्या चाहिये ? तहां सुनोः-साधन कहिये विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति मुमुक्षता, श्रवण, मनन निदिध्यासन, तत्त्वंपदार्थोंका शोधन, औ श्रोत्रसंबंधी महावाक्य अरु सिद्ध कहिये तिनोंका फल ब्रह्मात्माका अभेद निश्चयरूप विचार, सो या ग्रंथमैं हमनैं भली प्रकार कह्या है॥ ३२॥

(९७) अब ग्रंथका असाधारण अधिकारी कहे हैं:-

दोहा-बंध्यो मान चाहत छुट्यो, यह निश्चय मन माहिं॥ विचारमाल तांपर रची, अज्ञतज्ञ पर नाहिं॥ ३३॥

टीका:-यद्यपि अधिकारी पूर्व कहा है,

इहां कहणेका कछु प्रयोजन नहीं, तथापि सो भाषा औ शारीरकादि संस्कृत वेदांतग्रंथोंका साधारण कहा है औ इहां वक्ष्यमाण अभिप्रायसैं या भाषा ग्रंथका असाधारण अधिकारीके कथन अभिप्रायसैं पुनः कहा है। सो अभिप्राय यह हैः— मैं अविद्या तत्कार्यकर बंधायमान हूं यातै किसी प्रकारसैं छूटुं, यह निश्चय जाके अंतःकरणमें है औ शारीरकादि संस्कृत ग्रंथोंके विचारणेमैं सामर्थ्य नहीं, ऐसा जो मंदबुद्धिवाला मुमुक्षु है, तापर यह विचारमाला ग्रंथ है। अज्ञ जो विषयी औ पामर हैं औ तज्ञ जो ज्ञातज्ञेय विद्वान् हैं तिनपर नहीं ॥ ३३ ॥

(९८) अब मुमुक्षुकी प्रवृत्ति अर्थ, तीन दोहोंकर या ग्रंथकी प्रशंसा करे हैंः—

दोहा—और माल रतनादि जे, घात होत तिन हेत ॥ अद्भुत मालविचार

यह, तस्कर वस करि लेत ॥ ३४ ॥

षट्दर्सनकी माल जे, अपनो पच्छ लिये जु ॥ द्वैतरहित रुचि माल यह, सोभत सबन हिये जु ॥ ३५ ॥

राव रंक मन भावती, वरनाश्रम सुख दैन ॥ रुचि विचारमाला रची, चितवत अति चित चैन ॥ ३६ ॥

टीका:—जोगी जंगम सेवडे विप्र संन्यासी औ दरवेष ये षट् दर्शन हैं, अन्य स्पष्ट॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

(११) अब तत्त्वविचारका माहात्म्य कहे हैं:—

दोहा—अनाथ श्रवन बहुते किये, कह्यो बहुत परकार ॥ अब सुविचार विचार पुनि, करन न परै विचार ॥ ३७ ॥

टीका:—स्वामी अनाथदासजी कहे हैं:—

बहुते ग्रंथोंका श्रवण कीया औ बहुत प्रकारसैं कथन कीया, तथापि कृतकृत्यता न भई; अब सुष्ठु तत्त्वविचारकूं विचारिके बहुत विचार करणा परे नहीं ॥ ३७ ॥

(१००) अब अपनी नम्रता सूचन करते हुये ग्रंथकार, दो दोहोंकर कवियोंसैं प्रार्थना करै हैं,—

दोहा—छमा करो सिष जानकै, हे कवि महा प्रबुद्ध ॥ लेहु सुधार विचारकै, अच्छर सुद्ध असुद्ध ॥ ३८ ॥

हौं अनाथ केतिक सुमति, वरनो माल विचार ॥ राम मया सतगुरु दया, साधुसंग निरधार ॥ ३९ ॥

टीका—अर्थ स्पष्ट ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

(१०१) अब ग्रंथके रचणेमैं हेतु कहे हैं:—

दोहा—पुरि नरोत्तम मित्र वर, षरो

अतिथि भगवान ॥ वरनी माल विचा-
रमैं, तिहि आज्ञा परमान ॥ ४० ॥

टीकाः— अब परंपरासैं श्रुतकथा लिखे हैंः—
अनाथदासजी औ नरोत्तमपुरी जो परस्पर स्नेह-
के वशतैं विरक्त हुये साथ विचरते भये, कछु का-
ल पीछे अदृष्ट वशतैं वियुक्त हुये, अनाथदासजी
काश्मीरमैं प्राप्त भये औ नरोत्तमपुरीजी विचरते
हुये गुजरात देशमैं बडोंदे नाम नगरमैं प्रारब्धव-
शतैं राज्योंकर पूज्य होते भये, तब नरोत्तमपु-
रीजीनें विचार कीया, हमारे मित्र अनाथदास-
जी यद्यपि विरक्त हुये काश्मीरमैं विचरे हैं, तथा-
पि पूर्व संप्रदाय उक्त भेदवादके संस्कारतैं अद्वैत
निष्ठातैं च्युत भये हैं वा अद्वैतमैं निष्ठावान् हैं, या
परीक्षाके अर्थ पत्रिका लिखके ताके समीप पहुं-
चाई । ता पत्रिकामैं यह लिख्याः— परमेश्वर चिं-
तन अर्थ बहोत मोलवाली एक माला हमारे स-

मीप भेजो। ताकों पढकै औ ताके अभिप्रायकूं जानकै अनाथदासजीनें यह विचारमाला रची। सो कहे हैंः— नरोत्तमपुरी जो हमारे श्रेष्ठ मित्र हैं, पुनः कैसे हैं ? एक परमेश्वरहीं अतिथिवत् भली प्रकार जिनका पूज्य है, ताकी आज्ञाका स्वीकार करके हमनें यह विचारमाला नाम ग्रंथ रचा है॥ ४० ॥

(१०२) अब या ग्रंथका माहात्म्य कहे हैंः—

दोहाः— लिखै पढै अति प्रीति युत, अरु पुनि करै विचार ॥ छिन छिन ज्ञानप्रकास तिंहिं, होय सु रवि प्रकार ॥ ४१ ॥

टीकाः—जो पुरुष या ग्रंथकूं लिखे औ प्रीतिपूर्वक गुरुमुखात् श्रवण करे तथा इकांतमें स्थित होयके विचारै, ता पुरुषकों प्रतिक्षणं प्रकाशरूप ब्रह्मनिष्ठा दृढ होवै। जैसैं उदयसैं लेकै

मध्यान्हपर्यंत प्रतिक्षण सूर्यका प्रकाश वृद्ध होवै है तैसैं ॥ ४१ ॥

(१०२) अब जिन ग्रंथोंका अर्थ संग्रहकर या ग्रंथमैं लिख्या है, तिनके नाम कहे हैं:—

दोहा:—गीता भरथरिको मतो, एकादसकी युक्ति ॥ अष्टावक्र वसिष्ठ मुनि, कछुक आपनि उक्ति ॥ ४२ ॥

टीका:—“ कबहू न मन थिरता गइ ” औ “ निह संशय मन है चपल” इत्यादि वाक्योंकर गीताउक्त अर्थ कहा। औ “नदि आशा” इत्यादि वाक्योंकर भरथरिका मत कहा । औ “ अति कृपालु नहि द्रोह चित ” इत्यादि वाक्योंकर एकादशकी युक्ति कही । औ “ विषवत विषय विसार” इत्यादि वचनोंकर अष्टावक्र उक्त अर्थ कहा। औ सप्तभूमिका औ प्रपंचका अपवाद प्रतिपादक वच-

नोंकर वसिष्ठ उक्त अर्थ कहा। इन वचनोंका सं-
बंध प्रतिपादक कछु इक अपनी उक्ति है ॥ ४२ ॥

(१०४) सोरठा—सत्रह सैं छब्बीस, सं-
वत माधव मास शुभ ॥ मो मति जितिक
हुतीस, तेतिक बरनी प्रगट करि ॥ ४३ ॥

टीकाकारकी उक्तिः—

(१०५) दोहा—बालबोधिनी नाम यहि,
करो सारथिक सोच ॥ मूल सिंधुमों बिंदु
सम, लिख्यो अरथ संकोच ॥ १ ॥

कह्यो जु किंचित अरथमैं सो वेदां-
तको सार ॥ भले विचारे याह जो,
संसृति नसैं अपार ॥ २ ॥

संवत ससि गुन ग्रह ससी, गती अंक लिखवाम ॥ ज्येष्ठमास पष कृष्ण सुभ, तीज सोभ सुख धाम ॥ ३ ॥

कवित.

मायिक प्रपंच मांहिं सिंधु नाम देस आहिं तामैं साधु बेला नाम साधु जन गावहिं ॥ तासमैं निवास करैं ब्रह्मानंद मांहिं चरैं पालक प्रसाद हरि संत मन भावहीं ॥ संत जे समीप वसैं तप कर तनु कसैं इंद्रय मन रोक ध्यान ब्रह्ममैं लगावहीं ॥ अष्टम विश्राम जोइ इति भयो तामैं सोई लिख्यो आया राम-दास गोविंद सुना वहीं ॥ ४ ॥

श्लोक.

गोविंददासरचिता, शुद्धा पीतावरेण या ॥ सा बालबोधिनी टीका, सदा ध्येया मनीषिभिः ॥ १ ॥

इति विचारमालायां आत्मवान्की स्थितिवर्णनं नाम अष्टमविश्रामः समाप्तः ॥ ८ ॥

इति श्रीसटीका विचारमाला समाप्ता.

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीगुरुरामाय नमः ॥
॥ अथज्ञानकटारीलिख्यते ॥ दोहा ॥ वृत्तिव्यासि
एकाग्रचित्त ॥ यहीहमारोध्यान ॥ ब्रह्मरूपगुरुराम
कों ॥ नमस्कारसोइमान ॥ १ ॥ परमगुरुश्रीराम
के ॥ चरनेंराखूंध्यान ॥ प्रस्तावीमेंकहतहों ॥ ग्रंथ
कटारीनाम ॥ २ ॥ इंदवछंद ॥ लोहकटारिसबेको
हुबांधत ॥ ज्ञानकटारिसुदुर्लभभाई ॥ लोहकटारि
जुखाइमरेजंत ॥ सोअवतारधरेभवमाई ॥ ज्ञानक
टारिकुँखावतहैंसंतब्रह्मस्वरूपअखंडहोजाई ॥ फेर
कबूंजनमेंनमरेंहरिसंगसंतापकछूनरहाई ॥ ३ ॥
मनोहरछंद ॥ ज्ञानकोप्रकाससोतोहीरामणिरत्नजे
सो ॥ ताकोंअंधकारकेतपामरठेराइके ॥ ऐसोहीं
अन्यायकरें ॥ ताहिसेंचोरासिफिरें ॥ बेरबेरकहाक
होंतोहिसमुजाइके ॥ धिकतेरोजीवनहैमिथ्यानर
देहधरि ॥ मरेंक्योंनमूढतुंकटारिपेटखाइके ॥ हुंतो
हरिसंगसुखदुःखहुतेंन्यारो ॥ खाइज्ञानकिकटारिस
तगुरुगमपाइके ॥ ४॥ हीरामणिरत्नसोतोज़डहिम

कासआपु ॥ आपकोंनजानेतांसुजानोएकदेसी
है ॥ ज्ञानतोस्वयंप्रकासआपकुंबिजानेपुनि ॥ बि
द्धनएकरससुद्धसर्वदेसीहे॥जानतूंस्वरूपतेरोअस्ति
भातिप्रियऐसो ॥ दुःखरूपमानिरह्योतेरीमतिकेसी
हे ॥ केतहरिसंगमिथ्यादेहकूंतूंमानेमूढ ॥ मेरोकह्यो
मानेंतोकटारिखाएजेसीहे ॥ ५ ॥ भक्तिसोनजाने
प्रभुन्यारोकरिमानेतासें ॥ होतहेहरिकोद्रोहिफेरचि
तचाइके ॥ भक्तिअरुज्ञानइकभिन्नहिनजानोको
हु ॥ एकताहैभक्तिकृष्णकहिगीतागाइके ॥ लोक
हुरिजावेराधेकृष्णकोविहारगावे ॥ निंदामेंअस्तु
तिमानेमनमेंसराइकें ॥ केतहरिसंगमिथ्यादेहमेंअ
ध्यासकरि ॥ मरेंक्युनमूढतूंकटारिपेटखाइके ॥ ६ ॥
अजअविनासिएकअखंडअपारप्रभु ॥ ताकुंतोकह
तऊठहाथकोबनाइके ॥ जगतकेमाततातताकितो
उगारीबात ॥ केतेहोतूंनाचेकृष्णगोपिबनिआइके॥
अजंन्माकोंजन्मजानेवेदकीनबातमाने ॥ तातेंजा
तकालहिकेमुखमेंचवाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ ७ ॥

आपहोईजीवपापिव्यभिचारिभक्तिकरे ॥ केतप्रभु पावुंगोमेंवैकुंठहुंजाइके ॥ कोहुतोकहतमोक्षमोक्षहु सिलाकेमाहि ॥ कोहुतोकहतगोलोकमहुधाइके ॥ देसकालवस्तुपरिच्छेदसेंरहितप्रभु ॥ ताकोंकहेएक देसिमनमेंफुलाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ ८ ॥ करि सतसंगसुधारसक्युंनपीवेतुंतो ॥ होतराजिबहुतवि षयलपटाइके ॥ बांधेटेढीपागपेरेधोतिसोकिनेरिधा र ॥ अंगपरओढिलेतदुपेटोरंगाइके ॥ बोलेमीठीबात कहेबहुतसिहानोंसतसंगमेंनआवै कबुलोकसेंल- जाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ ९ ॥ ज्ञानकीकटारिकसि बांधतेरीकमरसें ॥ जाइसतगुरुपासलीजियेंसजाइ के ॥ सुद्धहिविचारकरिमारकामक्रोधहिकों ॥ म्या नसेंनिकासिलेतुंहाथमेंहलाइके ॥ करयाकिचोटआ रपारहिनिकासितेरोजानतुंस्वरूपजीवभावकूंमिटा इके ॥ केतहरिसंग० ॥ १० ॥ दुर्लभतेंदेहधरिकहा तेंकमाइकरि ॥ भुल्योनिजानंदहरिदेहबुधिलाइ के ॥ जंत्रमंत्रसाधेभूतप्रेतहिकूंबांधेतासेंकायाकूंसवा

धेदेहभावदेजलाइके ॥ बेरबेरनाहिनरदेहतोकुंआवे ऐसो ॥ मुक्तिकोदुहार देतधूलिमेंमिलाइके ॥ केत हरिसंग० ॥ ११ ॥ जपेंरेअजपाजापसोइहेंतुंआ पेंआप ॥ निश्चेकरिमानध्यानबेठजालगाइके ॥ देहबुधिटारिरूपआपकोसंभारिकामक्रोधलोभमोह याकोंदीजियेंभजाइके ॥ सुद्धतूंस्वयंप्रकाशछोडदे बिरानीआस ॥ होतक्युंहेरानमिथ्यामायामेंगंठा इके ॥ केतहरिसंग० ॥ १२ ॥ सुद्धहिविचारसोपो लादकीकटारिकरि ॥ गुरुज्ञुहारपासलीजियेंग डाइके ॥ गडिभलेघाटयाकुंअग्निमांहितातिकरि ॥ प्रेमरूपिपानिवाकोंदीजियेंचढाइके ॥ नामरूपरहि तकटारिसुदुरसकरिसुद्धबुधिम्यानतामेंराखियेंद्रढाइ के ॥ केतहरिसंग ॥ १३ ॥ करिचारोधामसबेतीरथ मेंगुम्योअरुभयोहैंपवित्रगंगागोमतिनहाइके ॥ की नौहठजागेतासेंजायगोक्योंरोगमूढइच्छेस्वर्गादि-कभोगबेठोक्याकमाइके ॥ तासेंतेरोजनममरनन-हिछूटेतुंतोजाननिजानंदघनउलटसमाइकै ॥ केतह

रिसंग० ॥ १४ ॥ खीरनीरएकाजानिदूधसोतेंडारि
दीनु ॥ कियोनविचारबैठोपानिकूंजमाइके ॥ ता
सैंतोतुंसारक्यानिकासेगोमथनकरि ॥ आपभूलि
औरकोंभूलावेभरमाइके ॥ मुखसेंकहतएकआतमा
सकलमाही ॥ देखिपरदोषचित्तरेतचरमाइके ॥ के
तहरिसंग० ॥ १५ ॥ आपजोकहतबातज्ञानकीब
नाइकरि ॥ मनमेंरहतराजिलोकमेंपुजाइके ॥ औ
रकहेबातकोउज्ञानकीकिसीकोंतब ॥ जानेमेरोमा
नगयोमरेयोंमुंजाइके ॥ जानेएकमैंहिहोंतोद्वैतभा
वछूटिजाय ॥ अंतरकिआगतेरिबैठतुंबुजाइके ॥
केतहरिसंग० ॥ १६ ॥ देहअभिमानिक्याविलो
वेबेठोपानिबातकाहुकीनमानितूंतोबोलतचगाइके
आपकोंअधीकजानिऔरकीतोहासिकरे ॥ का
हेकुंमरतसूतेसापकोंजगाइके ॥ बहुतकमायोधन
पेटमेंनखायोपरतियसोंलोभायोतोकुंलेवैगीबुगाइके
॥ केतहरिसंग० ॥ १७ ॥ बजावेमृदंगतालख्या
लखासेगावेआपरहेआठोजामरंगरागमेंभिजाइके ॥

आपकीसरावेबातऔरकीनभावेदेखी ॥ आपकूंअ
धिकमानिमूछमरडाइके ॥ हरिकेनगावेगुणविषैबा
तभावेमुख ॥ ज्ञानकीतोबातसुनिऊठतखिजाइके ॥
केतहरिसंग० ॥ १८ ॥ हंससेंकहावेअरुलछनतो
काकहिके ॥ बोलतगुमानभरिमुखमुसकाइके ॥ हं
सतोतोमोतिचुगेमंसकोंपवैयाकाक ॥ बैठेछांददेस
परफिरहिफिराइके ॥ ऐसेंखललोकहैंसोसारहिको
त्यागकरि ॥ वस्तुजोअसारताकोंराखतग्रहाइके ॥
केतहरिसंग० ॥ १९ ॥ कहाबेकपूरदेनहींगकीतो
वासनाहि ॥ नामधनपालधरेभीषमागेखाइके ॥
पढ्योहेवेदांतकछुबोलवेकोंसीख्योतब ॥ वादहिवि
वादकरेयुगतिलगाइके ॥ पोपटज्योंबोलेन्हदेग्रंथि
सोनखोलेसारासारहिनतोलेतासेंरह्योहैठगाइके ॥
केतहरिसंग० ॥ २० ॥ बनजकोंआयोकहाहांस
लकमायोधनगांठकोगमायोभयोभीषारीलुंटाइके ॥
सीख्योचारोवेदताकोभेदजोनजानेतोतुंफिरतंहोंयों
हिषालिबोजकूंउठाइके ॥ धनहिअघूटतेरेहाथसोंग

माइकरि ॥ आपछूटिऔरकूंतुंदेतहोखुटाइके ॥ के तहरिसंग० ॥ २१ ॥ सतगुरुदेवब्रह्मवेताकेसरन जाइचोरासिकोफंदतोकुंदेवेंगेंछुडाइके ॥ कौन्नहुमें फांसेआयोकरिलेविचारऐसें ॥ देहरूपहोइरह्योदे हमेंज्युडाइके ॥ देहकोप्रकासीतीनकालमेंनहोइदेह काहेकोंतूंबंधफिरछूटजातुडाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ २२ ॥ बाहिरसेंवृत्तितेरिषेंचीकरभीतरकुं ॥ सो हंसोहंजापसदारह्योहैजपाइके ॥ आंबकोउखेडिपे डबबुलकोबीजबोवे ॥ ताकीताकेरतवाडचंदनकपा इके ॥ हीरासोतोमूठिभरिफेंकीदेतद्वारबार ॥ जु तीकीजतनकरिराखतचुपाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ २७ ॥ तूंतोचिदानंदघनआतमाअषंडताकुंजी वजानिदेतभवसिंधुमेंडुबाइके ॥ नाहितीनदेहतेरे स्थूलअरुसुक्षमजुकारनकोसाक्षीहोइ दीजियेंउडाइ के ॥ काजनअकाजकछुकियोनविचारगरत्रारत जिजाइबेठोमुंडहुमुंडाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ २४ ॥ जातिकुलबरनकोतज्यो अभिमानमाततातहिको

नामसोतोदीनुहैभुलाइके ॥ औरहिचडायोरंगबा
ढ्योअभिमानदेखो ॥ कादीकेबिलाडीबेठोऊठहिथु
साइके ॥ लोकमेंपूजावेआपगुरुहिकहावेमनबहुत
फूलावेदेखोपंचमेंपुछाइके ॥ केतहरिसंग० ॥ २५॥
सवैया ॥ दुर्लभदेहधरीसोषरिकबहींसतसंगतेंनाहि
कियो ॥ विषेभोगकोभावकरीकपटिभवसागरपूर
मैंजातबयो ॥ तुंतोपुत्रपसूधनधामदारासबमेरोमे
रोकरिमोहिरह्यो ॥ हरिसंगकेशुद्धविचारबिनाएसो
मूढकोमालिकहोइरह्यो ॥ २६ ॥ सुषिहोयसदादु
खदूरतेरोसतसंगमेंजामेरोमानकह्यो ॥ तूंतोभुलि
गयोइकभीतसबेब्रह्मज्ञानपदारथक्योंनग्रह्यो ॥ तु
च्छभोगनिकाजउपावअनेककरी सठसंगतआयुब
ह्यो ॥ हरिसंगकैसुद्धविचारंबिनाएसोमूढकोमालि
कहोइरह्यो ॥ २७ ॥ मनोहरछंद ॥ करतगुमानए
कदेहअभिमानएसोआपमाहिआपेंआपफूल्योहि
फरतहैं ॥ नाहिवपुतीनतेरेचेतनस्वरूपसुधगीतासु
रुवेदवाक्यसाषजोभरतहै ॥ सारुअसाइहिकोकरि

लेविचारआपदेहकुंहुंमानिमूढकाहेकुमरतहैं ॥ जा
नोहरिसंगसतगुरुगमभयोतबचौरासिकेफंडहुमेंक
बुंनपरतहैं ॥२८॥ दोहा ॥ हर्षसोकमनकोगयों ॥
सांतभयोहैंचित्त ॥ सद्गुरुरामप्रसादतें ॥ जान्यों
नित्यानित्य ॥ २९ ॥ नित्यानित्यविवेकसें ॥ भई
अविद्यानास ॥ हर्षसोकतेंरहितजो ॥ सोहंब्रह्मप्र
कास ॥ ३० ॥ आपप्रकासअखंडहों ॥ सतचिद
आनंदरूप ॥ हरीसंगमनतेंपरे ॥ सोहंब्रह्मअनूप
॥ ३१ ॥ ज्ञानकटारीग्रंथयह ॥ सुक्षमकह्योजुभाइ ॥
सुद्धमुमुक्षूपरसदा अज्ञतज्ञपरनाइ ॥ ३२ ॥ उनीस
सेंछेमेवरष ॥ भयोसुपूरनजान ॥ मृगसिरमासरुशु
क्लतिथि ॥ नवमीअरुभृगुमान ॥ ३३ ॥ इतिश्री
रामगुरुशिष्यहरिसंगकृतज्ञानकटारीग्रंथसंपूर्ण ॥